फुलवारी

(चुने हुए सुन्दर पद्यों का संग्रह)

प्रकाशक

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

 मद्रास [दाम १—०—०

प्रकाशक की दो बातें—

आज भारतीय भाषाओं के साहित्य, चन्द्रमा की कला की तरह तेज़ी से पूनों की तरफ़ बढ़ रहे हैं। हिन्दी या हिन्दुस्तानी साहित्य के हर अंग में होड़-सी लगी है। कल की बात आज नहीं। पाठक को समय के साथ चलना होगा। इसीलिए यह नया संग्रह तैयार किया गया है।

इसको तैयार करने में 'सभा' की प्रवेशिका तथा मद्रास यूनिवर्सिटी की इंटरमीजिएट और विद्वान-प्रवेशिका के स्टैण्डर्ड को संपादकों ने ध्यान में रखा है। विद्यार्थियों की तकलीफ़ को ध्यान में रखकर टिप्पणी और कवियों की जीवनी दी गयी है।

इस संग्रह में जिन कवियों की रचनाएँ ली गयी हैं; तथा राष्ट्रभाषा के नाते जिनकी रचनाओं पर सारे भारत का बराबर हक़ है--उन सबको, हम दक्षिण के लाखों पाठक-पाठिकाओं की ओर से तथा अपनी ओर से हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करते हैं।

—प्रकाशक

सूची

पहली क्यारी

दूसरी क्यारी

तीसरी क्यारी

पहली क्यारी

श्री मैथिलीशरण गुप्त

गुप्तजी का जन्म चिरगाँव (झाँसी) में ई. सन् १८८६ में हुआ। आपके पिता कविता के प्रेमी और स्वयं कवि थे। गुप्त जी सीधे-सादे स्वभाव के देश-भक्त व्यक्ति हैं। देशभक्ति का पुरस्कार अभी (१९४१ ई.) आपको जेल जाकर देना पड़ा है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के बनाने वालों में आपका नाम सब से पहले आता है। सच्चे अर्थों में खड़ी बोली के आप ही सर्व-प्रथम कवि हैं। आपकी कविताओं से देश और समाज जागा है। उस दृष्टि से स्वर्गीय प्रेमचन्द और आप एक श्रेणी में आते हैं। आपकी 'भारत-भारती' ने देश में वह काम किया है जो बड़े से बड़ा उपदेशक या नेता नहीं कर सकता। उस ज़माने में नवयुवक आपकी 'भारत-भारती' जेबों में रखे घूमा करते थे। वह उनका वेद थी।

गुप्तजी ने सब तरह की कविताएँ लिखी हैं। कुछ छायावादी ढंग की भी। मगर आपके खण्ड-काव्य और महा-काव्य ही आपकी कीर्ति हैं। पंचवटी, जयद्रथ-वध, यशोधरा खण्ड-काव्य के आसमान में चमकते हुए सितारे हैं, तो 'साकेत' काव्य-जगत की अनमोल वस्तु। आपने दर्जनों पुस्तकें लिखी हैं। अगर उतना न लिखकर ये चार पाँच पुस्तकें ही आप लिखते तब भी आपको यही यश प्राप्त होता जो आज है।

'साकेत' पर आपको 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक,' (बारह सौ रुपये) और हिन्दुस्तानी एकाडमी का पुरस्कार (पाँच सौ) भी मिला है।

गुप्तजी भावुक कवि हैं। उन्होंने भावना की जितनी परवाह की है उतनी शब्दों को सजाने की नहीं। काव्यों का चरित्र-चित्रण भी मौलिक और महान हुआ है। उसमें गुप्तजी का अपना ढंग है। यशोधरा, कैकेयी, ऊर्मिला, सीता, भरत वग़ैरह पात्रों के ऊपर आपने अपनी छाप लगाकर उन्हें हमारे सामने रखा है। हम देखते ही कह सकते हैं कि ये पात्र तुलसी या वाल्मीकि के नहीं, मैथिली शरण के हैं।

गुप्तजी भक्त-हृदय के हैं। अतः भावुक हैं। राम उनका सब कुछ है। मगर देश भी उनके सामने वैसा ही है। 'भारत-वर्ष' भी आपका आराध्य है। प्राचीन धर्म, सभ्यता, देश, संस्कृति आदि से आपका बहुत प्रेम है।

आप देश-भक्त और गांधी-भक्त हैं। आपकी कविता ग्रन्थों में साकेत, भारत-भारती, जयद्रथवध, पंचवटी, स्वदेश-संगीत, झंकार, यशोधरा, द्वापर, वग़ैरह बहुत प्रसिद्ध हैं। 'मेघनादवध' (बंगला) का अनुवाद भी बहुत ही सुन्दर हुआ है।

गुप्त जी ने हिन्दी के आधुनिक साहित्य को प्राण-दान दिया है।

शुभकामना

इस देश को हे दीनबन्धो! आप फिर अपनाइये,
भगवान! भारतवर्ष को फिर पुण्य-भूमि बनाइये।
जड़-तुल्य जीवन आज इसका विघ्न-बाधा पूर्ण है,
हेरम्ब! अब अवलम्ब देकर विघ्न-हर कहलाइये॥

सब की नसों में पूर्वजों का पुण्य-रक्त-प्रवाह हो,
गुण, शील, साहस, बल तथा सब में भरा उत्साह हो।
सब के हृदय में सर्वदा समवेदना का दाह हो,
हमको तुम्हारी चाह हो, तुमको हमारी चाह हो॥

विद्या, कला, कौशल्य में सब का अटल अनुराग हो,
उद्योग का उन्माद हो, आलस्य-अघ का त्याग हो ।
सुख और दुख में एक-सा सब भाइयों का भाग हो,
अन्तःकरण में गूँजता राष्ट्रीयता का राग हो ॥

कठिनाइयों के मध्य अध्यवसाय का उन्मेष हो,
जीवन सरल हो, तन सबल हो, मन विमल सविशेष हो ।
छूटे कदापि न सत्य-पथ निज देश हो कि विदेश हो,
अखिलेश का आदेश हो जो बस वही उद्देश हो ॥

उपलक्ष के पीछे कभी विगलित न जीवन-लक्ष हो,
जब तक रहें ये प्राण तन में, पुण्य का ही पक्ष हो ।
कर्तव्य एक न एक पावन नित्य नेत्र-समक्ष हो,
सम्पत्ति और विपत्ति में विचलित कदापि न वक्ष हो ॥

हेरम्ब - गणेश
समवेदना - सहानुभूति
उन्माद - पागलपन
अघ - पाप
अध्यवसाय - मेहनत

उन्मेष - विकास
उपलक्ष - असल लक्ष्य के अलावा दूसरे छोटे लक्ष्य
वक्ष - हृदय

ठाकुर गोपाल शरण सिंह

आप रीवाँ राज के नईगढ़ी इलाक़े के ठाकुर हैं। आपका जन्म ई. सन् १८९१ में हुआ। आप अंग्रेजी, संस्कृत आदि के अच्छे जानकार हैं। पहले आप ब्रजभाषा में कविता लिखते थे। १९१२ ई. से खड़ी बोली में आपने लिखना शुरू किया। सरस और सरल रचना करने में आप बेजोड़ हैं। आपके सुपुत्र भी अच्छे कवि हैं। आपकी कविताओं के कई संग्रह प्रकाशित हुए हैं। हिन्दी कवियों में आपका काफ़ी सम्मान है।

आपकी कविता में अनेक गहरे विषयों का चुनाव है। वही नहीं आपने खड़ी बोली को मांजकर चमकाया है। स्व० महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने आपके बारे में ठीक लिखा था—"ठाकुर गोपाल शरण सिंह कविता की दृष्टि से भी राजा हैं और लौकिक विभूति की दृष्टि से भी। आप बड़े विद्या-व्यसनी, बड़े उदार-चरित और हिन्दी के बहुत बड़े प्रेमी हैं।'

आपकी 'मानवी' और 'ज्योतिष्मती' नामक पुस्तकों में ऊँचे दर्जे की कविताएँ संग्रहीत हैं।

ग्राम

प्रकृति-सुन्दरी की गोदी में,
खेल रहा शिशु-सा तू कौन ?
कोलाहल-मय जग को हर दम,
चकित देखता है तू मौन।

जग के भोलेपन का प्रतिनिधि,
सहज सरलता का आख्यान ;
विमल स्रोत मानव-जीवन का,
तू है विधि का करुण-विधान।

छिपा मही के मृदु अञ्चल में,
जग का मूर्तिमान अनुराग;
तुझसे ही सीखता जगत है,
औरों के हित करना त्याग।

भोली ललनाओं से लालित,
विश्व - पुष्प का पुण्य - पराग ;
कृषकों के श्रम-जल से सिंचित,
जग का छोटा-सा है बाग़।

होकर भी असभ्य तू ही है,
विश्व - सभ्यता का आधार ;
स्वावलम्ब की समुचित शिक्षा,
पाता तुझसे है संसार।

सरल बालकों का क्रीड़ा-स्थल,
जगती के कृषकों का प्राण;
करता है इस विपुल विश्व का,
तू ही सदा क्षुधा से त्राण।

मानवता का प्रेम - निकेतन,
आदि सभ्यता का इतिहास ;
भ्रातृ-भाव, समता, क्षमता का,
तू है अवनी में अधिवास ।

भोली चितवन से तू जग को,
सदा देखता है अविकार ;
सब के लिए खुला रहता है,
सन्तत तेरे उर का द्वार ।

दया-क्षमा-ममता आदिक हैं,
तेरे रत्नों के भण्डार ;
हैं निर्मल जल, शुद्ध वायु ही,
तेरे जीवन के उपहार ।

छल से रहता दूर किन्तु तू,
बल-पौरुष में है भर-पूर ;
तेरे जीवन-धन हैं जग में,
बस, किसान एवं मज़दूर ।

जग को जग-मग करनेवाला,
 है तुझ में न प्रकाश महान ;
पर मिट्टी के ही दीपक से,
 रहता है तू ज्योतिष्मान।

काँटे चुभते रहते ही हैं,
 उड़ती रहती तुझ पर धूल ;
तो भी तू न मलिन होता है,
 विश्व-वाटिका का मृदु-फूल !

रखकर सब से निकट निराला,
 जगती-तल में निज व्यक्तित्व ;
करता है तू सफल सर्वदा,
 अपना छोटा-सा अस्तित्व।

आख्यान - कहानी
विधान - नियम, निर्णय
लालित - प्यार किया गया
श्रम-जल - पसीना
क्षमताशक्ति - ताक़त
चितवन - नज़र, दृष्टि
जग-मग - प्रकाशमय, चमकीला
ज्योतिष्मान - प्रकाशमान

राजपूत सिपाही

श्री श्यामनारायण पांडेय

भारत-जननी का मान किया,
बलिवेदी पर बलिदान किया ।
अपना पूरा अरमान किया,
अपने को भी कुर्बान किया ॥

रक्खी गर्दन तलवारों पर,
थे कूद पड़े अंगारों पर ।
उर ताने शर-बौछारों पर,
धाये बरछी की धारों पर ॥

झन झन करते हथियारों में,
औ' नागों के फुफकारों में।
जंगी-गज-प्रबल कतारों में,
घुस गये स्वर्ग के द्वारों में॥

वह ज़हर भरा था तीरों में,
मेवाड़ देश के धीरों में।
जिससे दुश्मन के वीरों में,
बँध सके न वे जंजीरों में॥

उनमें कुछ ऐसी आन रही,
कुछ पुश्तैनी यह बान रही।
मेवाड़-देश के लिए सदा,
वीरों की सस्ती जान रही॥

कहते थे भाला आने दो,
चिल्ले पर तीर चढ़ाने दो।
आगे को पैर बढ़ाने दो,
रण में घोड़ा दौड़ाने दो॥

देखो फिर कुन्तलवालों की,
कुछ करामात करवालों की ।
इस वीर-प्रसवनी अवनी के,
छोटे से छोटे बालों की ॥

बसने तक को हैं ग्राम नहीं,
जंगल में रहते धाम नहीं ।
पर भीषण यही प्रतिज्ञा है,
अरि कर सकते आराम नहीं ॥

हम माता के गुण गायेंगे,
बलि जन्म-भूमि पर जायेंगे ।
अपना झंडा फहरायेंगे,
हम हाहाकार मचायेंगे ॥

वैरी सम्मुख अड़ जायेंगे,
रण में न तनिक घबड़ायेंगे ।
लड़ जायेंगे, लड़ जायेंगे,
दुश्मन को ले उड़ जायेंगे ॥

यह कहते थे, चढ़ जाते थे,
रण करने को घबड़ाते थे।
मारू बाजे कढ़ जाते थे,
हथियार लिये बढ़ जाते थे॥

मुगलों का नाम मिटायेंगे,
अपना साहस दिखलायेंगे।
लड़ते लड़ते मर जायेंगे,
मेवाड़ न जब तक पायेंगे॥

('हल्दी घाटी' से)

कुर्बान - बलिदान
अंगार - आग
शर-बौछार - तीर की वर्षा
धाये - दौड़े
नाग - सर्प, साँप
आन - इज्जत, मर्यादा
बान - आदत

चिल्ला - प्रत्यंचा, जेह, धनुष की डोरी
कुन्तलवाले - केशवाले
करवाल - तलवार
बाल - बच्चे, लड़के
मारू बाजा - युद्ध का बाजा
कढ़ जाना - निकलना, बाहर आना

श्री हरिवंश राय 'बच्चन'

सन् १९०७ ई० में हरिवंश राय 'बच्चन' का जन्म इलाहाबाद में हुआ। आप एम. ए., बी. टी. हैं। मगर उससे ज़्यादा आप कवि हैं। पेशा अध्यापक का करते हैं।

श्री 'बच्चन' तूफ़ान की तरह साहित्य में आये। चारों तरफ़ से विरोध की आँधी उठ पड़ी। लोगों ने कहा—यह अनैतिकता फैलानेवाली रचना करता है। वह शराब, साक़ी और प्याला का प्रचार करता है। मगर यह आँधी ज़्यादा समय तक ज़ोर नहीं बाँध सकी; तुरन्त ही असलियत बाहर आ गयी। बच्चन के हाला, प्याला, मधुबाला में जो दार्शनिकता और व्यंग छिपा था उसे लोगों ने जल्दी नहीं पहिचाना। जब पहिचाना तब बच्चन के पीछे पागल हो गये। पाठकों ने बच्चन की 'मधुशाला' में ख़ूब छककर पिया और उसकी हाला और मधुशाला की ख़ूब तारीफ़ की। फिर तो बच्चन आसमान पर चढ़े। आज उनके बिना कोई कवि-सम्मेलन सफल नहीं समझा जाता।

बच्चन जी की कविता में जवानी की ललकार भरी है। मगर इधर निराशा घर करती जा रही है। कोई शक नहीं कि आप प्रतिभाशाली कवि हैं। आपकी भाषा बड़ी सुधरी, चलती हुई,

बामुहाविरा होती है। भाषा के विषय में तो बच्चन वर्तमान हिन्दी कवियों में सब से आगे हैं। श्री रामनरेशजी त्रिपाठी कहते हैं—"अपने निजी निर्णय के अनुसार मैं कह सकता हूँ कि बच्चन जी ने अपनी रचनाओं में मुहावरों का जितना प्रयोग किया है उतना किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। प्राचीन कवियों में यह विशेषता केवल तुलसीदास में पायी जाती है। कवि के भावों को स्पष्ट करने में उनकी भाषा कहीं बाधक नहीं दिखाई पड़ती। ...मेरा विश्वास है कि बच्चन जी किसी भी विषय पर—जिसके वे विशेषज्ञ हों—भाव गर्भित कविता लिखने में सफल हो सकते हैं। 'निशा-निमंत्रण' इसका प्रमाण है।"

बच्चन जी ने अभी तक साहित्य को बहुत सी चीज़ें दी हैं। जिनमें मधु-शाला, मधु-बाला, मधु-कलश, निशा-निमंत्रण, एकांत-संगीत बहुत मशहूर हैं। आपसे अभी बड़ी बड़ी आशाएँ हैं।

कुछ कर न सका

मैं जीवन में कुछ कर न सका!

जग में अंधियारा छाया था,
मैं ज्वाला ले कर आया था,
मैंने जलकर दी आयु बिता, पर जगती का तम हर न सका।
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

बीता अवसर क्या आएगा,
मन जीवन-भर पछताएगा,
मरना तो होगा ही मुझको, जब मरना था तब मर न सका।
मैं जीवन में कुछ कर न सका!

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

यह कहना मुश्किल है कि 'नवीन' जी पहले क्या हैं ? कवि हैं ? लेखक हैं ? वक्ता हैं ? या देशभक्त हैं ? दरअसल वे पहले दर्जे के कवि, लेखक, वक्ता और देशभक्त हैं। आपकी कविता में भाव का प्रवाह, गद्य में तेज़ी और चुस्ती, तकरीरों में आग लगा देनेवाली ताक़त और देश-भक्ति ऐसी कि हथेली पर जान लिये फिरने का दीवानापन।

जन्म ग्वालियर राज्य के एक छोटे से गाँव में हुआ। भयंकर ग़रीबी में बालकपन गुज़रा। ऐसी ग़रीबी कि बेटे को एक गिलास दूध देने के वास्ते माँ को दूसरों का आटा पीसना पड़ता था। अपने पैरों के बल आपने बी.ए. तक पढ़ा। मगर परीक्षा नहीं दी। 'प्रताप' के संपादक श्री गणेश शंकर विद्यार्थी का असर आपके जीवन पर बहुत पड़ा। तभी से आप प्रताप परिवार में शामिल हुए और अब भी उसी में हैं। लिखने की प्रवृत्ति और अभ्यास भी विद्यार्थी जी की कृपा से हुआ। आप अकेले हैं, शादी नहीं की। देश के साथ हैं आप, और आपके साथ है कविता। कानपूर आपका कार्य-क्षेत्र है।

आपकी कविताओं के दो हिस्से हैं—वीर और शृंगार। पहले में दलितों का चित्रण, कुचली हुई मानवता के प्रति करुणा और प्रलय का आवाहन, अत्याचार करनेवालों के प्रति रोष और महानाश की तैयारी है—यानी क्रांति की कविता है। दूसरे हिस्से में कवि का अपना अन्तरतम है—जहाँ से प्रेम, वियोग, निराशा की धारा बह रही है। दोनों ही तरह की कविताओं में कवि को अच्छा कमाल हासिल है। कवि ख़ुद जैसा मस्ताना है, कविता भी वैसी ही मस्तानी है।

नवीन जी जेल की चिड़िया हैं। कई बार उधर की हवा खा आये हैं। दुर्भाग्य से अभी तक आपकी सारी कविताओं का संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ। हाँ 'कुंकुम' अलबत्ता दर्शनीय चीज़ है।

आप नौ-उम्र हैं। आप से साहित्य और देश को बड़ी बड़ी उम्मीदें हैं।

जूठे पत्ते

क्या देखा है तुमने नर को,
नर के आगे हाथ पसारे?
क्या देखे हैं तुमने उसकी,
आखों में खारे फव्वारे?
देखे हैं? फिर भी कहते हो,
कि तुम नहीं हो विप्लवकारी!

लपक चाटते जूठे पत्ते, जिस दिन मैंने देखा नर को,
उस दिन सोचा क्यों न लगा दूँ, आज आग मैं दुनियाँ भर को?
यह भी सोचा, क्यों न टेंटुआ, घोंटा जाय स्वयं जगपति का?
जिसने अपने ही स्वरूप को, रूप दिया इस घृणित विकृति का!

जगपति कहाँ? अरे, सदियों से,
वह तो हुआ राख की ढेरी;
वरना समता संस्थापन में,
लग जाती क्या इतनी देरी?
छोड़ आसरा अलख शक्ति का,
रे नर, स्वयं जगतपति तू है
तू गर जूठे पत्ते चाटे,
तो तुझ पर लानत है, थू है!!

कैसा बना रूप यह तेरा, घृणित, दलित, बीभत्स भयंकर!
नहीं याद क्या तुझको, तू है, चिर सुन्दर, नवीन, प्रलयंकर?
भिक्षा-पात्र फेंक हाथों से, तेरे स्नायु बड़े बलशाली;
अभी उठेगा प्रलय नींद से, ज़रा बजा तू अपनी ताली।

ओ भिखमंगे, अरे पतित तू,
ओ मज़लूम, अरे चिरदोहित,
तू अखण्ड भण्डार शक्ति का,
जाग अरे निद्रा संमोहित;
प्राणों को तड़पानेवाली;
हुंकारों से जल-थल भर दे,

अनाचार के अम्बारों में,
अपना ज्वलित पलीता धर दे।

भूखा देख तुझे गर उमड़ें, आँसू नयनों में जग-जन के,
तो तू कह दे नहीं चाहिए, हमको रोनेवाले जनखे;
तेरी भूख, जिहालत तेरी, यदि न उभाड़ सके क्रोधानल,
तो फिर समझूँगा कि हो गयी, सारी दुनियाँ कायर, निर्बल!

खारे-फव्वारे - नमकीन फव्वारा, आँसू
टेंटुआ - गला, गर्दन
अलख - जो दीख न पड़े
लानत - धिक्कार
थू - धिक्कार
स्नायु - छोटी छोटी नसें (Tissue)
मज़लूम - पीड़ित
दोहित - शोषित, (Exploited)
अम्बार - ढेर, राशि
पलीता - बत्ती
जनखे - नपुंसक
जिहालत - मूर्खता, अज्ञान
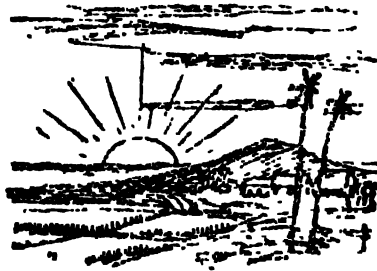
कवि

श्री रामानुजदास, बी. ए.

(१)

समर भूमि है, कर्म-स्थल है जगत्, मुझे परवाह नहीं।
सांसारिक विभवों को पाने की मुझको कुछ चाह नहीं॥
विभव-पराभव की चिन्ता का मुझ में अन्तर्दाह नहीं।
नहीं निरादर से कुछ भय है, आदर से उत्साह नहीं॥

(२)

लड़ो-भिड़ो, दौड़ो-दौड़ाओ, विजय-पराजय अपनाओ।
भिन्न-भिन्न इच्छित कर्मों में, अपने अपने जम जाओ॥
औरों की अवनति के द्वारा, अपनी उन्नति दिखलाओ।
दुख सागर में डूब-डूब कर, सुखरूपी अमृत लाओ॥

(३)

मैं मनमानी अपनी बातें सब को सदा सुनाऊँगा !
हास्य रुदन में, भय विस्मय में, दुख में, सुख में गाऊँगा ॥
जल में, थल में, अनिल-अनल में, शैल-शिखर पर जाऊँगा ।
रंक-कुटी, नृप-प्रासादों में कहीं नहीं घबराऊँगा ॥

(४)

शशि से कहीं अधिक शीतल हूँ, दीप्तिमान रवि से बढ़कर ।
तथा सलिल से अधिक सरस हूँ और अनल से प्रबल प्रखर ॥
विस्तृत गगन बहुत ही लघु है, त्रिभुवन भर है मेरा घर ।
जिनपर कृपा दृष्टि करता हूँ, पल में बनते वही अमर ॥

(५)

वर्तमान मेरा किंकर है और भूत मेरा अनुचर ।
कौन करेगा समता मेरी ? है भविष्य भी मेरा चर ॥
नृपति यहाँ पर शीश झुकाते अमित शक्ति मेरी लखकर ।
वस्तु, देश या काल, हमारा है प्रभाव सब के ऊपर ॥

(६)

वाल्मीकि जब कहलाता था, था मेरा आरम्भिक काल ।
त्रिभुवन विजयी रावण तक का किया न मैंने क्या क्या हाल ॥

निकट हमारे शत्रु-जनों की कभी नहीं गल सकती दाल।
तनिक रुष्ट होता हूँ जिस पर वह विनष्ट होता तत्काल ॥

(७)

मेरी कृतियों से होता है लोगों को आश्चर्य महान।
किन्तु नहीं आश्चर्य-विषय है, ऐसा ही है मेरा मान ॥
कवि हूँ मुझे न कोई भ्रम है, सभी विषय का मुझको ज्ञान।
गान इसी कारण करता हूँ जिसमें हों प्रसन्न भगवान ॥

अन्तर्दाह - भीतर जलना
अनिल-अनल - हवा-आग
रंक - ग़रीब
प्रासाद - महल

दीप्तिमान - प्रकाशमान
किंकर - नौकर
चर - दास, दूत
दाल गलना - वश चलना
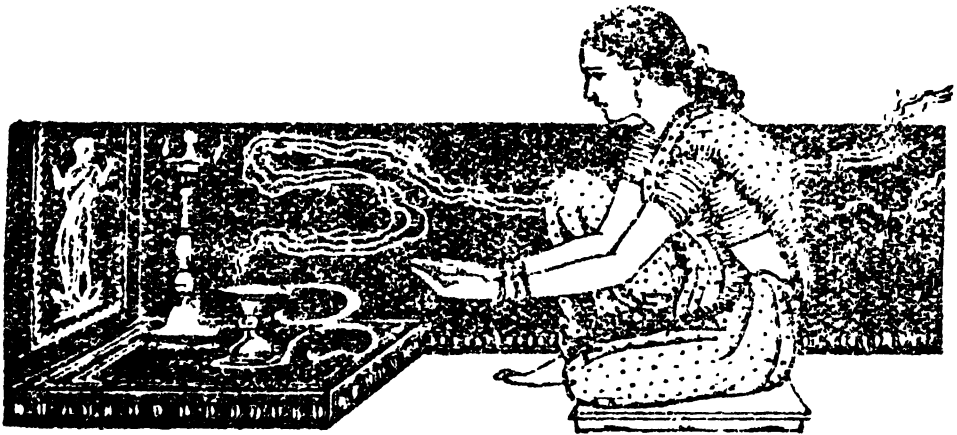
श्री सोहनलाल द्विवेदी

श्री सोहनलाल जी की प्रसिद्धि बच्चों के लायक कविता लिखने के कारण हुई। तब आप खुद भी विद्यार्थी थे। अब तो एम० ए० बी० एल० हैं।

अब आप राष्ट्रीय कवि के रूप में प्रसिद्ध हो गये हैं। आपकी कविताओं में विशुद्ध राष्ट्रीयता और भाषा में सरलता है।

आपकी कविता-पुस्तकों में दूध-बतासा, बाल-भारती, दूर्वादल, और भैरवी प्रसिद्ध हैं।

खादी-गीत

खादी के धागे-धागे में
अपनेपन का अभिमान भरा
भारत का इसमें मान भरा
अन्यायी का अपमान भरा।
खादी के रेशे रेशे में
अपने भाई का प्यार भरा
माँ-बहनों का सत्कार भरा
बच्चों का मधुर दुलार भरा।

खादी की रजत चन्द्रिका जब आकर तन पर मुसकाती है,
तब नवजीवन की नयी ज्योति अन्तस्तल में जग जाती है।

खादी से दीन विपन्नों की उत्तप्त उसास निकलती है,
जिससे मानव या पत्थर की भी छाती कड़ी पिघलती है।
खादी में कितने ही दलितों के दग्ध हृदय की दाह छिपी,
कितनों की कसक कराह छिपी, कितनों की आहत आह छिपी।
खादी में कितने ही नंगों-भिखमंगों की है आस छिपी,
कितनों की इसमें भूख छिपी, कितनों की इसमें प्यास छिपी।

खादी तो कोई लड़ने का
है भड़कीला रणगान नहीं
खादी है तीर कमान नहीं
खादी है खड्ग कृपान नहीं।
खादी को देख-देख तो भी
दुश्मन का दल थहराता है
खादी का झंडा सत्य-शुभ्र
अब सभी ओर फहराता है।

खादी की गंगा जब सिर से पैरों तक वह लहराती है,
जीवन के कोने-कोने की तब सब कालिख धुल जाती है।
खादी का ताज चाँद-सा जब मस्तक पर चमक दिखाता है,
कितने ही अत्याचार-ग्रस्त, दीनों के त्रास मिटाता है।

खादी ही भर भर देश-प्रेम का प्याला मधुर पिलायेगी,
खादी ही दे दे संजीवन मुर्दों को पुनः जिलायेगी।
खादी ही बढ़, चरणों पर पड़, नूपुर-सी लिपट मनायेगी,
खादी ही भारत से रूठी आज़ादी को घर लायेगी।

अन्तस्तल - हृदय
विपन्न - ग़रीब, दुखी
उत्तप्त - गरम
कसक - दर्द
कृपान - कटार
थहराना - कँपाना
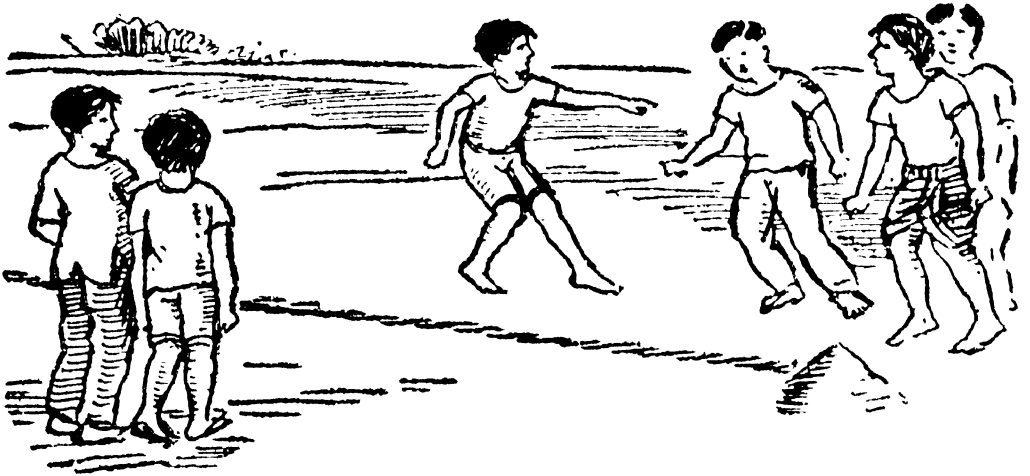
श्री गोपालसिंह नेपाली

श्री नेपाली नवयुवक कवि हैं। सन् १९०३ ई. में आपका जन्म हुआ।

आपकी कविता में प्रकृति-वर्णन और कल्पना की प्रधानता रहती है। भाषा भी सुन्दर होती है। उठते हुए कवि हैं। पंछी, उमंग, रागिनी आदि आपकी सुन्दर रचनाएँ हैं।

गंगा किनारे

कुछ देर यहाँ दिल जमता है,
कुछ देर तबीयत लगती है।

आखों का पानी गरम समझ यह
दुनियाँ आँसू कहती है,
हर सुबह-शाम को घासों पर
फिर ओस नरम पड़ रहती है,
लहरों में आँसू-ओस लिये
वैसे ही गंगा बहती है,
कुछ देर यहाँ दिल जमता है, कुछ देर तबीयत लगती है।

उठकर पश्चिम से आती है
चलकर पूरब को जाती है
अपनी धुन में चल पड़ती है
अपनी धुन में कुछ गाती है
पर्वत का देश दिखाती है
सागर की राह बताती है
कुछ देर यहाँ दिल जमता है, कुछ देर तबीयत लगती है।

कोई कपड़े ही धोते हैं
कोई दिल खोल नहाते हैं
कोई अपनी दिलचस्पी से
कागज़ की नाव बहाते हैं
दीवाने बैठे एक बग़ल
ऊँची तानों से गाते हैं
कुछ देर यहाँ दिल जमता है, कुछ देर तबीयत लगती है।

आकर माँझी अपना बेड़ा
उस पार बढ़ा ले जाता है
किस्मत में जो मिल जाते हैं
उस पार चढ़ा ले जाता है

पतवार चला ले जाता है
वह पाल उड़ा ले जाता है
कुछ देर यहाँ दिल जमता है, कुछ देर तबीयत लगती है।

छू कर गंगा की लहरों को
जब ठंडे झोंके आते हैं
हम मस्त-मगन हो जाते हैं
दिल भर के झोंके खाते हैं
दुनियाँ सपना-सी लगती है
सपनों में हम खो जाते हैं
कुछ देर यहाँ दिल जमता है, कुछ देर तबीयत लगती है।

कागज़ की नाव बहाते हैं - कल्पना करते हैं

दीवाना - पागल

मांझी - नाव खेनेवाला

बेड़ा - नाव या नावों का समूह

पतवार - जिससे नाव को घुमाया जाता है

पाल - Sail, वह कपड़ा जिससे नाव के चलने में मदद मिलती है

सपना - कल्पना

श्री माखनलाल चतुर्वेदी

राजनीति को बहुत लोगों ने ऐसा दलदल माना है कि आदमी उसमें फँसा तो फिर निकलना मुहाल हो जाता है। राजनीति के धुरंधरों को खाने-पीने की सुधि रहती ही नहीं, फिर अन्य बातों की चर्चा ही क्या? इसीलिए अगर कोई राजनीतिक-कार्यों में पूरा भाग लेता हुआ साहित्य-क्षेत्र में भी अगुआ बने तो आश्चर्य की ही बात होगी। चतुर्वेदी जी ऐसे ही इने-गिने प्रतिभाशालियों में हैं जिनकी गति राजनीति और साहित्य—दोनों में समान रूप से है। मध्य प्रान्त की सब तरह की प्रवृत्तियों में चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व और विचारों का काफ़ी प्रभाव पड़ा है—पड़ रहा है। आप बरसों से साप्ताहिक 'कर्मवीर' का संपादन करते आ रहे हैं। 'कर्मवीर' हिन्दी का एक श्रेष्ठ पत्र है। कट्टर गांधीवादी होने की वजह जेल तो मामूली बात है—जीवन में।

आप बहुत सुन्दर वक्ता और लेखक हैं। गद्य में भी पद्य की गति रहती है। माखनलाल जी हृदय के कवि हैं। आपकी कविता पढ़िये और भावों में डूब जाइये। कहीं कहीं भाषा की जटिलता और अस्पष्टता बाधा ज़रूर देती है। मगर भाव-पक्ष

इतना प्रबल होता है कि आप उसका रस लिये बिना नहीं रह सकते। आपकी कविताओं का प्रधान विषय यद्यपि प्रेम और उसका सुख-दुख है, फिर भी आप राष्ट्रीय कवि के नाम से ही प्रसिद्ध हैं। आप कृष्ण के अनन्य उपासक हैं। अखिल भारतीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हैं।

आप खंडवा में रहते हैं। आपका जन्म सन् १८८८ ई. में हुआ।

भारतीय विद्यार्थी

(१)

समय जगाता है, हम सब को झटपट जग जाना ही होगा,
देख विश्व-सिद्धान्त कार्य में निर्भय लग जाना ही होगा।
दृढ़ करके मस्तिष्क मनस्वी बनकर वीर कहाना होगा,
पूर्ण-ज्ञान-सर्वेश-चरण पर, जीवन-पुष्प चढ़ाना होगा।
यह स्वार्थी संसार एक दिन बने हमीं से जब परमार्थी,
तब हम कहीं कहा सकते हैं, सच्चे भारतीय विद्यार्थी॥

(२)

सीख रहे हों पश्चिम से जो धर्म-स्थल में धरने के गुण,
नैतिक छान-बीन की दृढ़ता मर्म-स्थल में धरने के गुण।

हृदय, हाथ, मस्तिष्क मिलाकर, कर्म-स्थल जय करने के गुण,
अपनी कार्य शक्ति से दुनियाँ भर के मन वश करने के गुण।
वे ही हैं माता के रक्षक, वे ही हैं सच्चे शिक्षार्थी,
वे ही हैं लक्ष्यों के लक्षक, प्यारे भारतीय विद्यार्थी ॥

(३)

आज जगत की राज-पुस्तिका में भारत का नाम नहीं है,
वर्तमान आविष्कारों में, हाय! हमारा काम नहीं है!
रोता है सब देश, देश में दानों को भी दाम नहीं हैं,
कहते हैं सब लोग यहाँ के लोगों में कुछ राम नहीं है।
नाम नहीं है! काम नहीं है! दाम नहीं है! राम नहीं है!
तो बस, इन्हें प्राप्त करने तक हमको भी आराम नहीं है ॥

(४)

भारतमाता! अपने इन पुत्रों को पहले का सा बल दे,
हे भारती! दया कर क्षण में सब की दुर्बलता तू दल दे।
भारत की सच्ची आत्माएँ आगे बढ़ें, उन्हें क्यों भय हो?
भारतवासी मिलकर गावें—भारतवर्ष तुम्हारी जय हो।
यह सुनकर जगतीतल कह दे, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो'
प्रतिध्वनि में जगदीश्वर कह दें, 'भारतवर्ष तुम्हारी जय हो' ॥

जीवन-रण में वीर! पधारो मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरि पर चढ़ना, गिरकर बढ़ना, तुमसे सब विघ्नों को भय हो।
नेम निभाओ, प्रेम दृढ़ाओ, शीश चढ़ा भारत उद्धारो,
देवों से भी कहला लो यह—'विजयी भारतवर्ष! पधारो।'
भारत के सौभाग्य विधाता, भारतमाता के आज्ञार्थी,
भारत-विजय-क्षेत्र में जाओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी॥

लक्षक - उद्देश प्राप्त करनेवाले
राम नहीं है - भरोसा या धीरज नहीं है
नेम - नियम
दृढ़ाओ - मजबूत बनाओ

उद्बोधन

श्री मन्नन द्विवेदी, गजपुरी

हिमालय सर है उठाये ऊपर, बगल में झरना झलक रहा है।
उधर शरद के हैं मेघ छाये, इधर फटिक जल छलक रहा है॥

इधर घना बन हरा-भरा है, उपल पै तरुवर उगाया जिसने।
अचम्भा इसमें है कौन प्यारे, पड़ा था भारत जगाया उसने॥

कभी हिमालय के शृंग चढ़ना, कभी उतरते हैं श्रम से थक के।
थकन मिटाते हैं मंजु झरना, बटोही छाया में बैठे थक के॥

कृशोदरीगन कहीं चली हैं, लिये हैं बोझा छुटी है बेनी।
निकलके बहती है चन्द्रमुख से, पसीना बनकर छटा की श्रेनी॥

गगन समीपी हिमाद्रि शिखरों, घरों में जलती है दीपमाला।
यही अमरपुर, उधर हैं सुरगण, इधर रसीली है देवबाला॥

गिरीश भारत का द्वार पर है, सदा से है यह हमारा संगी।
नृपति भगीरथ की पुण्य-धारा, बगल में बहती हमारी गंगी॥

बता दे गंगा कहाँ गया है, प्रताप, पौरुष, विभव हमारा?
कहाँ युधिष्ठिर, कहाँ है अर्जुन, कहाँ है भारत का कृष्ण प्यारा॥

सिखा दे ऐसा उपाय मोहन, रहें न भाई पृथक हमारे।
सिखा दे गीता की कर्म-शिक्षा, बजा के बंशी सुना दे प्यारे॥

अँधेरा फैला है घर में माधो, हमारा दीपक जला दे प्यारे।
दिवाला देखो हुआ हमारा, दिवाली फिर भी दिखा दे प्यारे॥

हमारे भारत के नौनिहालो, प्रभुत्व, वैभव, विकास धारे।
सुहृद हमारे, हमारे प्रियवर, हमारी माता के चरन के तारे॥

न अब भी आलस में पड़ के बैठो, दशो दिशा में प्रभा है छायी।
उठो अँधेरा मिटा है प्यारे! बहुत दिनों पर दिवाली आयी॥

फटिक - स्फटिक, स्वच्छ
बटोही - मुसाफ़िर
कृशोदरी - पतली कमरवाली
द्वारपट - किवाड़
नौनिहाल - नौजवान

श्री गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही'

'सनेही' जी १८८३ ई. में पैदा हुए। उर्दू-फ़ारसी का अच्छा अध्ययन किया। उर्दू में ही पहले शायरी करते थे। फिर हिन्दी की ओर आये। स्वर्गीय महावीर प्रसाद जी द्विवेदी ने प्रोत्साहन दिया। आप बहुत दिनों तक अध्यापक का काम भिन्न भिन्न स्कूलों में करते रहे। फिर असहयोग में नौकरी छोड़ दी और साहित्य-सेवा में लग गये। आजकल आप कानपुर में रहते हैं। अ. भा. कवि सम्मेलन के सभापति भी हो चुके हैं। 'सुकवि' नामक मासिक पत्र का संपादन करते हैं।

आपकी कविता परिमार्जित और हृदय-ग्राहिणी होती है। करुण रस आपको बहुत प्रिय है। कृषक-क्रंदन वग़ैरह पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हैं।

लड़कपन

(१)

चित्त के चाव, चोचले मन के,
वह बिगड़ना घड़ी घड़ी बन के ।
चैन था, नाम था न चिन्ता का,
थे दिवस और ही लड़कपन के ॥

(२)

झूठ जाना, कभी न छल जाना,
पाप का पुण्य का न फल जाना ।
प्रेम वह खेल से, खिलौनों से,
चन्द्र तक के लिए मचल जाना ॥

(३)

चन्द्र था और, और ही तारे,
सूर्य भी और थे प्रभा धारे।
भूमि के ठाट कुछ निराले थे,
धूलिकण थे बहुत हमें प्यारे ॥

(४)

सब सखा शुद्ध चित्तवाले थे,
प्रौढ़ विश्वास प्रेम पाले थे।
अब कहाँ रह गयीं बहारें वे,
उन दिनों रंग ही निराले थे ॥

(५)

सूर्य के साथ ही निकल जाना,
दिन चढ़े घूम-घाम घर आना।
काम था काम से न धन्धे से,
काम था सिर्फ़ खेलना खाना ॥

(६)

फिर मिला इस तरह नया जीवन,
पुस्तकों में पड़ा लगाना मन।

मिल चले जब कि मित्र सहपाठी,
बन गया एक बाग़ बीहड़ बन ॥

(७)

भार यद्यपि कठिन उठाना था,
किन्तु उद्योग ठीक ठाना था ।
हौसले से भरा हुआ मन था,
और दिन, और ही ज़माना था ॥

(८)

अब दशा कहाँ रही मन की,
फ़िक्र है धर्म, धाम, तन, धन की ।
एक घूँसा लगा गयी दिल पर,
याद जब आ गयी लड़कपन की ॥

चोचले - नाज़, अदा
घड़ी घड़ी - बार बार
बनके - बनकर, मान लेने के बाद
मचल जाना - ज़िद्द करना
ठाट - साज, शान
बहार - आनन्द
ठाना था - निश्चित किया था

श्री पं० रूपनारायण पांडेय

पांडेय जी का जन्म लखनऊ में हुआ। अभी भी आप वहीं पर 'माधुरी' का संपादन कर रहे हैं। इसके पहले भी आपने कई पत्रिकाओं का संपादन सफलता पूर्वक किया है।

पांडेय जी हिन्दी-संसार में अनुवादक के नाम से ज़्यादा प्रसिद्ध हैं। रवीन्द्र बाबू की कहानियों, नाटकों और उपन्यासों का तथा द्विजेन्द्र लाल राय के नाटकों का अनुवाद आपने बड़ी सफलता पूर्वक किया है। सैकड़ों ग्रन्थों के अनुवादक तथा लेखक के रूप में आप हिन्दी में आये हैं। अनुवाद भी बड़ा ही मँजा हुआ होता है। भाषा परिमार्जित। कहीं मालूम नहीं होगा कि यह अनुवाद है। कहीं कहीं तो मूल से बढ़ जाते हैं। पांडेय जी जैसे अनुवादक बहुत कम मिलेंगे।

इसके अलावा आप अच्छे कवि हैं। आपकी बहुत सी फुटकर कविताएँ पत्रिकाओं में छपी हैं। 'पराग' नाम से उनमें से कुछ का संग्रह भी निकला है। करुण रस का पुट लिये आपकी कविता बहुत ही सरल और सरस होती है।

जन्म सन् १८८४ ई०।

दलित कुसुम

(१)

अहह ! अधम आँधी, आ गयी तू कहाँ से ?
प्रलय घन-घटा सी छा गयी तू कहाँ से ?
पर-दुख-सुख तू ने, हा ! न देखा न भाला ।
कुसुम अधखिला ही, हाय ! यों तोड़ डाला ॥

(२)

तड़प तड़प माली अश्रु-धारा बहाता ।
मलिन मलिनिया का दुख देखा न जाता ॥
निठुर ! फल मिला क्या व्यर्थ पीड़ा दिये से ।
इस नवलतिका की गोद सूनी किये से ॥

(३)

यह कुसुम अभी तो डालियों में धरा था।
अगणित अभिलाषा और आशा-भरा था॥
दलित कर इसे तू काल, क्या पा गया रे!
कण भर तुझमें क्या हा! नहीं है दया रे!!

(४)

सहृदय जन के जो कण्ठ का हार होता।
मुदित मधुकरी का जीवनाधार होता॥
वह कुसुम रंगीला धूल में जा पड़ा है।
नियति! नियम तेरा भी बड़ा ही कड़ा है॥

मलिनिया - मालिन
दिये से - देने से

नियति - काल, भाग्य
मधुकरी - भ्रमरी
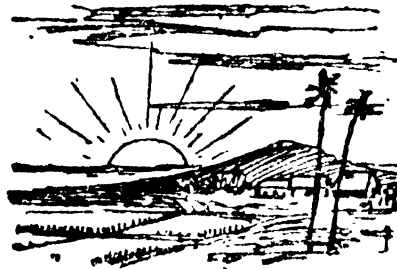
श्री कामता प्रसाद गुरु

श्री गुरुजी मध्यप्रान्त के रहनेवाले हैं। इनके पूर्वज राजपरिवारों के गुरु होते आये हैं। अतः ये लोग गुरु कहलाते हैं। गुरु जी कई भाषाओं के जानकार व लेखक हैं। अच्छे समालोचक भी हैं। कई पत्रिकाओं का संपादन कर चुके हैं। पेशा आप अध्यापक का करते रहे हैं। साहित्य-सेवा आपके जीवन का व्रत है।

हिन्दी भाषा का कोई संतोषजनक प्रामाणिक और संपूर्ण व्याकरण अब तक नहीं था। वह कमी गुरुजी ने पूरी की। आपने बहुत-सी कविताएँ और लेख लिखे हैं। आप हिन्दी के माने हुए अधिकारी विद्वान हैं। आजकल आप जब्बलपुर में रहते हैं।

सहगमन

छूटने पाया न कंकण ब्याह का ।
आ गया आदेश विक्रमशाह का ॥

शीघ्र ही जयसिंह जाओ युद्ध पर ।
देश हित के हेतु सर्वस त्याग कर ॥

पास पत्नी के गये ठाकुर तभी ।
और उसको पत्र दे बोले अभी ॥

शीघ्र ही फिर भेंट कर उसको हिये ।
हट गये झटपट निकलने के लिए ॥

देवकी ने धीर अपना खो दिया ।
प्राणपति से झट लिपटकर रो दिया ॥

पर अचानक भाव उसका फिर गया ।
मोह का परदा हृदय से गिर गया ॥

प्रेम से उसने सुना पति का कहा ।
खेद पति के चित्त का जाता रहा ॥

किन्तु जब आयी बिछुड़ने की घड़ी ।
गाज सी दोनों मनों पर आ पड़ी ॥

मोह का संकेत फिर कर अनसुना ।
धर्म का कर्तव्य दोनों ने गुना ॥

देवकी ने शीघ्र रण कंकण दिया ।
बाँध उसको हाथ में पति ने लिया ॥

चिन्ह दोनों साथ ले उत्साह में ।
जा रहे जयसिंह हैं रन-राह में ॥

सुध प्रिया की मार्ग में आती रही ।
किन्तु रन-मैदान में जाती रही ॥

युद्ध में तो और ही कुछ ध्यान है ।
पूर्ण हिय में देश का अभिमान है ॥

प्राण क्या है देश के हित के लिए ।
देश खोकर जो जिये तो क्या जिये ॥

मग्न हैं जयसिंह रन के चाव में ।
ला रहे हैं शत्रु को निज दाँव में ॥

घाटियाँ, मैदान, पर्वत, खाइयाँ ।
सब कहीं हैं सूरमा औ' दाइयाँ ॥

रात-दिन है अग्नि-वर्षा हो रही ।
रात-दिन है पूर्ण लोथों से मही ॥

व्योम, जल, थल, सब कहीं है रन मचा ।
युद्ध के फल से नहीं कोई बचा ॥

एक दिन जयसिंह धावा मार कर ।
दल सहित जब जा रहे थे केन्द्र पर ॥

एक दाई घायलों के बीच में ।
दिख पड़ी सोती रुधिर के कीच में ॥

ध्यान दे जयसिंह ने उसको लखा ।
और फिर उसके हृदय पर कर रखा ॥

हो विकल उसको जगाने वे लगे ।
मर चुकी थी वह भला अब क्यों जगे ॥

'घायलों की वीर-सेवा में लगी।
और फिर प्रिय ध्यान में पति के पगी ॥

गोलियों से शत्रु के भागी न थी।
चोट घातक झेल वह जागी न थी ॥

शोक में जयसिंह कुछ बोले नहीं।
थे जहाँ बैठे रहे बैठे वहीं ॥

दुःख में अब घोर चिन्ता छा गयी।
प्रियतमा कैसे यहाँ कब आ गयी ॥

आ गये उस काल सेनापति वहाँ।
वीर नारी की लखी शुभ गति वहाँ ॥

वीर होकर भी हुई उनको व्यथा।
आदि से कहने लगे उसकी कथा ॥

दाइयाँ कुछ आपके दल के लिए।
कुछ समय पहिले मुझे थीं चाहिए ॥

की गई इसकी प्रकाशित सूचना।
देवकी ने शीघ्र भेजी प्रार्थना ॥

दाइयों में इस तरह भर्त्ती हुई।
अन्त लौं निज काज यह करती हुई ॥

शत्रु के अन्याय से मारी गयी ।
पायगा फल दुष्टता का निर्दयी ।।

हाल सुन जयसिंह का दुख बढ़ गया ।
शत्रु पर अब क्रोध उनको चढ़ गया ।।

सौंप कर मृत देह सेनापति निकट ।
प्रण किया सब से उन्होंने यह विकट ।।

"भस्म जब मैं कर चुकूँगा रिपु-नगर ।
तब पड़ेगी अग्नि इस प्रिय देह पर ।।

और जो मैं ही मरूँ रिपु हाथ में ।
फूँकना मुझको प्रिया के साथ में ।।"

दूसरे दिन व्योम से जलता हुआ ।
पर-कटे खगराज-सा चलता हुआ ।।

केन्द्र से कुछ दूर रव करके बड़ा ।
युद्ध का नभ-यान आकर गिर पड़ा ।।

नष्ट रिपु को यान ने था कर लिया ।
मार्ग रक्षित केन्द्र का था धर लिया ।।

किन्तु रिपु का क्रुद्ध गोला चल उठा ।
और उसकी आग से यह जल उठा ।।

साथ ही प्रेमी युगल बुझकर जले ।
　　और दोनों साथ ही जल कर चले ॥

एक कंकण से बंधे थे वे यहाँ ।
　　दूसरे से जा बँधे दोनों वहाँ ॥

प्रेम-बन्धन जन्म लय का सार है ।
　　प्रेम-बन्धन देश का उद्धार है ॥

प्रेम-बन्धन देवकी जयसिंह का ।
　　तोप से भी रिपु न खण्डित कर सका ॥

भेंट हिये - हृदय से लगाकर
गाज - वज्र
दाइयाँ - नसें
सूरमा - वीर, शूर
लोथ - शव, शरीर के टुकड़े
पगी - डूबी हुई
झेलना - सहना
अन्त लौं - अन्त तक
पर-कटे - पंख कटे
नभ-यान - हवाई जहाज़

नष्ट - रिपु......धर लिया
　—जयसिंह वाले नभ-यान ने शत्रुओं का नाश किया और अपने केन्द्र का सुरक्षित मार्ग पकड़ा ।
बुझकर जले - मौत के बाद जल गये
जल कर चले - जलने के बाद स्वर्ग को चले ।
एक कंकण - विवाह का बंधन
दूसरे - दूसरा कंकण (मृत्यु का)
वहाँ - (स्वर्ग में)

श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

श्री रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं—"दिनकर हिन्दी के क्रान्तिदर्शी कवि हैं। इनकी कविता हृदय को झकझोर डालती है। वर्तमान भारत की दलित आत्मा दिनकर की कविता से जाग-सी उठी है। हिन्दी में अपने समकक्ष ये एक ही कवि हैं और हिन्दी साहित्य के गौरव हैं।"

दिनकरजी का जन्म १९०८ ई. में हुआ है। आप इतिहास के B. A. (आनर्स) हैं। इसलिए इतिहास आपके प्राणों में लिपट गया है। आप भारत के खंडहरों पर रोये हैं। हिन्दुस्तान की आत्मा को जगाने में आपकी कविताओं ने शंखध्वनि का काम किया है। हिमालय, नई दिल्ली, विपथगा वगैरह कविताएँ तो बेजोड़ हैं। ओज और तेज बरसता है—हर पंक्ति से। 'रेणुका,' 'हुंकार' आपकी उस तरह की कविताओं का संग्रह है। उसके अलावा 'रसवंती' और 'द्वन्द्वगीत' नामक संग्रह में कवि का दूसरा पहलू दीख पड़ता है।

आपकी भाषा में प्रसादगुण और चलतापन कुछ और आ जाय तो आप ज़रूर इस ज़माने के सर्वप्रथम कवि होंगे। आप अभी ३६ साल के नवयुवक हैं। सब-रजिस्ट्रार का काम करते हैं।

अनल-किरीट

लेना अनल-किरीट भाल पर
ओ आशिक होनेवाले !
कालकूट पहले पी लेना
सुधा - बीज बोने वाले !

धरकर चरण विजित शृंगों पर
झण्डा वही उड़ाते हैं;
अपनी ही उँगली पर जो
खंजर की ज़ंग छुड़ाते हैं।

पड़ी समय से होड़, खींच मत
तलवों से काँटे रुक कर;
फूँक फूँक चलती न जवानी
चोटों से बचकर, झुक कर।

नींद कहाँ उनकी आँखों में
जो धुन के मतवाले हैं?
गति की तृषा और बढ़ती
पड़ते पद में जब छाले हैं।

जागरूक की जय निश्चित है
हार चुके सोनेवाले;
लेना अनल-किरीट भाल पर
ओ आशिक होनेवाले!

जिन्हें देख कर डोल गयी
हिम्मत दिलेर मरदानों की;
उन मौजों पर चली जा रही
किश्ती कुछ दीवानों की।

बेफ़िक्री का समाँ कि तूफ़ाँ
में भी एक तराना है;
दाँतों उँगली धरे खड़ा
अचरज से भरा ज़माना है।

अभय बैठ ज्वालामुखियों पर
अपना मन्त्र जगाते हैं;
ये हैं वह जिनके जादू
पानी में आग लगाते हैं।

रूह ज़रा पहचान रखें
इनकी, जादू - टोने वाले;
लेना अनल-किरीट भाल पर
ओ आशिक होने वाले!

तीनों लोक चकित सुनते हैं
घर - घर यही कहानी है;
खेल रही नेज़ों पर चढ़कर
रस से भरी जवानी है।

भू सँभले, हो सजग स्वर्ग
यह दानों की नादानी है ;
मिट्टी का नूतन पुतला यह
अल्हड़ है, अभिमानी है।

अचरज नहीं खींच ईंटें
यह सुरपुर को बर्बाद करे ;
अचरज नहीं, लूट जन्नत
वीरानों को आबाद करे।

तेरी आस लगा बैठे हैं
पा पाकर खोनेवाले ;
लेना अनल-किरीट भाल पर
ओ आशिक होनेवाले !

सँभले जग, खिलवाड़ नहीं
अच्छा चढ़ते-से पानी से ;
याद हिमालय को भिड़ना
कितना है कठिन जवानी से।

ओ मदहोश! बुरा फल है
शूरों के शोणित पीने का;
देना होगा तुम्हें एक दिन
गिन गिन मोल पसीने का।

कल होगा इन्साफ़ यहाँ
किसने क्या किस्मत पायी है;
अभी नींद से जाग रहा युग
यह पहली अँगड़ाई है।

मंज़िल दूर नहीं अपनी
दुख का बोझा ढोनेवाले!
लेना अनल-किरीट भाल पर
ओ आशिक होनेवाले!

अनल-किरीट - अग्नि का ताज (ख़तरों का जीवन-भाव)
आशिक - प्रेमी
कालकूट - विष, आपदाएँ
सुधा-बीज - अमरता के बीज (परोपकार, भलाई)
विजित - जीते हुए
अपनी ही...छुड़ाते हैं - (अपने सिर विपत्ति लेते हैं—भाव)
ज़ंग - मैल, Rust
समय से होड़ पड़ी - समय से बाजी लगी है। अर्थात् समय बहुत कम है।

फूंक फूंककर - देखकर, सावधानी से

तृषा - प्यास, चाह

डोल गयी - छूट गयी

मौज - लहर

किश्ती - नाव

बेफ़िक्री - निश्चिंतता

समां - नज़्ज़ारा, दृश्य

तूफ़ाँ में भी एक तराना है - विपत्ति में भी उल्लास और संगीत है।

पानी में आग लगाना - अद्भुत काम करना

जादू-टोना - मंत्र-तंत्र

नेज़ा - भाला, बर्छी

दाना - बुद्धिमान

यह दानों की नादानी है - (नौ जवान लोगों की क्रांति और उत्साह की भावना)

अचरज नहीं....आबाद करे - (अमीरों को ग़रीब और ग़रीबों को सुखी करे)

चढ़ता-पानी - बाढ़, जवानी

हिमालय - बलवान से बलवान

शोणित - खून, मृत्यु

पसीना - परिश्रम

देना होगा....पसीने का - उसकी तकलीफ़ों का मूल्य देना होगा।

कल होगा....अंगड़ाई है - दुनियाँ के बदलने के बाद क्या होगा। अभी नहीं कहा जा सकता। क्योंकि अभी तो परिवर्तन प्रारंभ ही हुआ है।

श्री बेचन शर्मा 'उग्र'

'उग्र' जी ने अपने उपनाम को अपनी रचनाओं में सार्थक किया है। भाषा को आपने सजाया और बनाया है। आपकी रचनाओं में आपकी भाषा भीमवेग से बहती नदी की तरह प्रवाहित होती है। कोई शक नहीं कि हिन्दी का गद्य आपका ऋणी रहेगा। आपकी उसपर ज़बर्दस्त छाप पड़ी है। मगर जहाँ तक विषय और भावों से मतलब है—वहाँ पर मतभेद है। उग्र जी यथार्थवादी लेखक हैं। मगर कहीं कहीं आपका यथार्थवाद सीमा को पार कर गया है।

आपने गद्य ज़्यादा लिखा है। उपन्यास, कहानियाँ, एकांकी, नाटक वग़ैरह आपने बहुत लिखे हैं। एक ज़माना था जब हिन्दी संसार आपकी कहानियों के पीछे पागल था।

चिनगारी, दिल्ली का दलाल, बुधुआ की बेटी, आदि पुस्तकें बहुत प्रसिद्ध हुई। महात्मा ईसा—नाटक तो बहुत ही बढ़िया बन पड़ा है। आपने कविताएँ भी लिखी हैं—मगर थोड़ी। आपकी प्रतिभा प्रखर है।

आपका जन्म १९०१ ई. में हुआ।

श्मशान

सैकत - शय्या एक तुम्हारे पास है,
दिव्य देव-सरि पात्र एक जलपान का ;
अर्धमास तक अँधेरे में वास है,
इन्दुकरों से दीपक पाते दान का !

एकमात्र आहार तुम्हारा वायु है,
अम्बर है एक प्राचीन आकाश ही !
सुनता हूँ मैं अन्तहीन तव आयु है,
मृत्यु प्रिया, विख्यात पुत्र है नाश ही !

ऐसे निर्धन तुम्हीं एक संसार में—
धन-कुबेर भी जाते जिसके द्वार पर!

तुम हो सब से बड़े विश्व के प्यार में,
जग-विश्राम-स्थान तुम्हारा गेह वर!

मित्र तुम्हारे कुक्कुर, गृद्ध, शृगाल हैं,
परम शांत बीभत्स तुम्हारा रूप है।

आभूषण-वत अस्थि और नृ-कपाल हैं,
भूतल पर तव वेष श्मशान अनूप है।

शत्रु तुम्हारे जीवित प्राणी हैं सभी,
मृतक-मित्र तुम-सा न और है दूसरा।

तुम तब तक सहयोग न करते हो कभी,
मानव को जब तक न जान लेते मरा।

पथ का भिक्षुक रहे या कि सम्राट हो,
शक्ति-हीन या भीमसेन सा हो बली।

चाहे कोई अपने घर का लाट हो,
अंग तुम्हारा सब की विश्राम-स्थली।

तन से लेकर पंचतत्त्व तुम बाँटते,
क्षिति, पावक, जल, भूमि और आकाश को।

मन से सब के मोह-रज्जु हो काटते,
दिखला कर स्वर्गीय पवित्र प्रकाश को।
पर, श्मशान हो क्रूर बड़े हम जानते,
कर्म तुम्हारे दुःखद होते हैं महा।
जिसको हम जीवन-धन अपना मानते,
नाश देखकर उसका कहते हो 'अहा!'
पुष्पों की, कोमल वस्त्रों की, हृदय की,
सेज सजाते थे हम जिस प्रिय के लिये।
इति कर दी तुमने भी निश्चय अनय की—
काष्ट-चिता-शैय्या देकर उसके लिये।
रो रोकर हम वह्नि बुझाना चाहते,
'हो' 'हो' कर तुम उत्साहित करते उसे।
ऐसे कोमल तन को कैसे दाहते?
लज्जित होते वनज देखकर के जिसे।
ले कितनों के लाल मिलाते धूल में,
कितनों का सर्वस्व अग्नि में डालते।
शूल हूल देते हो प्रायः फूल में,
तव करनी पर कितने आँसू डालते।

जो हो, है गुण एक तुम्हारा श्रेष्ठ तर,
साम्यवाद के तुम सच्चे आचार्य हो।
एक दृष्टि रखते संसारी जीव पर,
भिक्षुक हो, नृप हो, अनार्य हो, आर्य हो।

सैकत-शय्या - बालू की सेज (नदी का किनारा)
देव-सरि - गंगा
अंधेरे - (कृष्ण पक्ष)
अम्बर - कपड़ा
मृत्यु-प्रिया - मृत्युपत्नी
गेह - घर
कुक्कुर - कुत्ता
शृगाल - सियार
नृ-कपाल - मनुष्य की खोपड़ी
अपने घर का लाट - बड़ा आदमी

क्षिति - धरती
मोह-रज्जु - अज्ञान
अहा - ज्वाला की ध्वनि, आनन्द
अनय - अनीति, अन्याय
'हो' 'हो' - ज्वाला की आवाज़
वनज - कमल
लाल - पुत्र
शूल - काँटा
हूल देना - चुभो देना, गड़ा देना
करनी - काम

श्री सियाराम शरण गुप्त

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि श्री बाबू मैथिली शरण जी के छोटे भाई हैं—श्री सियारामशरण जी। आप मैथिली शरण जी की कविता-सम्पत्ति के भी हिस्सेदार बने हैं। सियाराम शरण जी, भाषा, भाव, छन्द में नये पुराने को साथ लेकर चले हैं। यानी न पुराने को छोड़ा है, न नये का तिरस्कार किया है। दोनों में से जो अच्छा लगा, ज़रूरत हुई, उसे ले लिया है। रचनायें भी आपकी सामयिक विषयों पर हुई हैं। करुण रस का पाक बहुत अच्छा बना है।

सियाराम शरण जी सफल कवि ही नहीं, बल्कि सफल गद्य-लेखक भी हैं। उपन्यास, नाटक, कहानियाँ, निबन्ध भी आपने लिखे हैं—और अच्छे लिखे हैं।

'नारी' नामक उपन्यास तो एक अपने ढंग की चीज़ है। उसका अन्य भाषाओं में अनुवाद भी हुआ है और हो रहा है।

गोद, नारी (उपन्यास), मानुषी (कहानी संग्रह), पुण्यपर्व (नाटक), मौर्य-विजय, दूर्वादल, आत्मोत्सर्ग, अनाथ, विषाद, आर्द्रा, पाथेय, मृण्मयी, बापू (कविता); तथा झूठ-सच—नामक निबन्ध ग्रन्थ उत्तम साहित्य में स्थान पाते हैं।

चिरगाँव, झांसी के आप रहनेवाले हैं। आपका जन्म सं. १८९५ ई. में हुआ था।

शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी

'काफ़िर है, काफ़िर है, मारो !'
उत्तेजित जन चिल्लाये ;
विद्यार्थी जी बिना झिझक के
झट से आगे बढ़ आये ।

"'काफ़िर'—वह करीम उनको भी
देता है दाना - पानी ;
पर 'अल्लाहो अकबर' कहकर
ठीक नहीं है शैतानी ।

अरे ख़ुदा के बन्दो, ठहरो,
क्या करने जाते हो आह !

बचो, बचो, शैतान भुलाकर
तुम्हें कर रहा है गुम-राह ।

नहीं भागने को आया मैं,
मुझे भले ही मारो तुम ;

फिर भी सब हिन्दू न मरेंगे,
जी में ज़रा विचारो तुम ।

अरे, प्यार का प्याला रहते
भाया है क्यों ज़हर तुम्हें ?

क़हर करोगे क़हर मिलेगा
महर करोगे महर तुम्हें ।

हाज़िर मेरा ख़ून, तुम्हारा
फूले फले अगर इस्लाम,

जिसकी ख़ूबी बतलाते हो
भाई-चारे का पैग़ाम ।

भाई, उसके लिये चाहिये
तुममें दुनियाँ-भर का प्यार ;

मगर तुम्हारे हाथों में है
नाच रही नंगी तलवार।
सड़ी-सड़ी बातों पर हम दो
भाई लड़ते-मरते हैं।
और तीसरे हँसकर हम पर
हाय! हुकूमत करते हैं।
यह दोजख़ की आग जलाकर
क्या बहिश्त में जाओगे?
आप गुलामी गले लगाये
आज़ादी क्या पाओगे?
मन्दिर तोड़-तोड़ कर तुमने
आज मसजिदें तुड़वाईं।
राम-रहीम एक की दो-दो
जगहें गोड़ी, गुड़वाईं।
नहीं मसजिदें ही उसकी हैं
गिरजे भी हैं, मन्दिर भी।
बन्दे बहुत-बहुत हैं उसके
मगर एक वह है फिर भी।

राम, खुदा के पाक नाम पर
करके शैतानों के काम,
क्या शहीद हो सकते हैं हम
उस मालिक के नमकहराम ?
ऐसे हिन्दू-मुसलमान से
मैं 'म्लेच्छ-काफ़िर' ही ख़ूब;
मन्दिर - मसजिद से पहले है
मुझ में ही मेरा महबूब !
अरे इसी में मौज मज़ा है
लगा लगाकर हम बाज़ी;
तरह तरह से आव-भगत कर
हिल मिल करें उसे राज़ी।
सदियों तक आपस में लड़कर
करते रहे बराबर वार,
एक बार तो वैर छोड़कर
भाई, कर देखो तुम प्यार।
इसी मुल्क में हुए, और हम
यहीं रहेंगे आगे भी;

लड़ मर कर सह चुके बहुत,
क्या और सहेंगे आगे भी ?
अब मत भोगो, अपने हाथों
अरे बहुत तुमने भोगा ;
हिन्दू - मुसलमान दोनों का
यह संयुक्त राष्ट्र होगा।"

*   *   *

हीन हुई दिनकर की आभा
सान्ध्य-गगन में होकर दीन,
हेतु बिना जाने ही सहसा
सुहृदों के मन हुए मलीन !
व्याप्त हो गया मारुत-रव में
स्वजनों का अज्ञात विलाप,
फूल गयी 'बापू' की छाती
बहुत दूर अपने ही आप !
ओ मा, तेरी गोदी में है
तेरा लाल पड़ा स्वच्छन्द ;

उत्सव आज मना ले अक्षय
 न्यून न हो तेरा आनन्द !
कवि, तू भी आनन्द नृत्य कर,
 मति क्यों मूक हुई तेरी;
युग-युगान्त के बाद बजा ले
 घन-गम्भीर विजय भेरी !

* * *

उत्पीड़ित पद्-दलित जनों ने
 मुक्ति - मन्त्र - दाता खोया ;
पुण्य पथी नवयुवक जनों ने
 जीवन - निर्माता खोया।
लक्ष-लक्ष श्रमिकों - कृषकों ने
 त्राता-सा त्राता खोया ;
अगणित बन्धुजनों ने अपना
 भ्राता-सा भ्राता खोया ।

शहीद - प्राण देनेवाला, बलि चढ़ने वाला

करीम - करुणानिधि (भगवान)

बन्दा - भक्त

गुमराह करना - रास्ता भुलाना

क़हर - विपत्ति, आफ़त

महर - कृपा, मेहरबानी

पैग़ाम - सन्देश

गोड़ी - कब्र-स्थान

गुड़वाई - खुदवाई

महबूब - प्यारा, भगवान

बापू - महात्मा गांधी

छाती फूल गयी - दिल खुशी से भर [उठा

[श्री गणेश शंकर विद्यार्थी (यू.पी.) कानपुर के रहनेवाले थे। हिन्दी के बड़े विद्वान और लेखक थे। आप कांग्रेस के नेता थे। कई बार जेल गये। साप्ताहिक 'प्रताप' का संपादन आप ही करते थे। आप एक आदर्शवादी वीर कार्यकर्त्ता थे। प्राणों की बाजी लगाकर काम करनेवाले थे।

१९३१ ई. में कानपुर में हिन्दू-मुसलमानों के बीच बड़ा भारी दंगा हुआ था। आप उसमें निष्पक्ष होकर हिन्दू-मुसलमानों की मदद कर रहे थे। मगर कुछ जोश में अंधे मुसलमानों ने आपका खून कर डाला। एक रत्न उठ गया।]

श्री गुरुभक्त सिंह

गुरु भक्तसिंह जी प्रकृति के कवि हैं। प्रकृति निरीक्षण बहुत सरस और गहरा है। प्रकृति के हर पेड़-पत्ते, चिड़िया से आपका परिचय और प्रेम है।

कविता की भाषा चलती, मुहावरेदार होती है। भावुकता के छींटे कविता में जान ला देते हैं। आपके काव्यों में 'नूरजहाँ' बहुत प्रसिद्ध है। उसका चरित्र-चित्रण बहुत ही सुन्दर हुआ है। इसके अलावा भी आपके कई कविता-ग्रन्थ हैं।

१८९३ ई. में आपका जन्म हुआ।

काँटा

खटक रहा हूँ मैं तो सब को, क्यों नहिं खटकूँ काँटा हूँ,
उलझ रहे हैं सभी हमीं से यही देख सन्नाटा हूँ।
रँगनी हूँ मैं फूल हमारा शोभित सुन्दर ललित सुनील,
तारों की है मेख गगन में यहाँ लगी सोने की कील।
खड़ा खड़ा कोमल पत्तों की करता मैं रखवाली हूँ,
नंगी भू का मैं भूषण हूँ; जंगल की हरियाली हूँ।
मैं घमोय हूँ, कनक कटोरा भरा ओस से लेकर प्रात,
सूर्य देव को अर्घ्य चढ़ाता वन में हर एक प्रभात।
लोभी जीव न हाथ लगावें बस भर मैं अड़ जाता हूँ,
पाँव बढ़ा तो चुभ जाता हूँ, हाथ बढ़ा गड़ जाता हूँ।

मैं गुलाब हूँ, फूल हमारा सारे जग को है प्यारा,
फूल-सूल की धूल न होती होता जो नहीं रखवारा।
काँटे के सिर फूल हज़ारों चढ़े हुए तुम पावोगे,
लग जाऊँगा किसी अंग में तोड़ अगर बिलगावोगे।
मानवती कर मान सजन से वन की राह जो लेती है,
विह्वल प्रियतम की बिनती पर ध्यान तनिक नहिं देती है।
मैं ही गुप्त सहायक हो कर तब प्रेमी का देता साथ,
पग लग लग के राह रोकता सी-सीकर कहती 'हे नाथ'।
आँचल पकड़ उलझ जाता हूँ लिपटा कर उसका प्रिय चीर,
इधर सुलझती उधर उलझती निकल न पाती हुई अधीर।
अकस्मात यह मुँह से निकला—"प्यारे कंटक दूर करो,
"सुलझाओ मेरी सारी को, इन्हें निकालो बाँह धरो।"
तब प्रीतम जो साथ साथ ही छिपा छिपा-सा आता था,
सोच सोच इसकी कठोरता मन ही मन अकुलाता था।
सुन कर करुण पुकार प्यार से दौड़ छिपा कर सीने से,
सुलझा कर प्रिय वस्त्र सँवारे अँगिया भरी पसीने से।
मेरा यह उपकार, प्रेममय उसका मिलता क्या उपहार,
जिधर देखिए उधर हमारा ही सब करते हैं संहार।

रेंगनी - एक पौधा जिसमें नीले नीले फूल और काँटे होते हैं। नीले फूल के बीच में पीला किंजल्क होता है।

सोने की कील - पीला किंजल्क

घमोय - एक पौधा

कनक कटोरा - सोने के रंग का कटोरा जैसा फूल

फूलमूल की धूल न होती - अगर कांटा न होता तो फूल की जड़ का भी पता न चलता।

मानवती - स्त्री, युवती

मान करना - रूठना

सजन - प्रियतम

अंगिया - चोली, कुरती
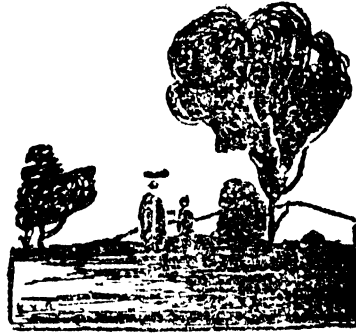
श्रीमती महादेवी वर्मा

श्रीमती महादेवी वर्मा पर हमको नाज़ है। हिन्दी के आधुनिक साहित्य में इनका स्थान बहुत ऊँचा है। बहुत लोग तो इन्हें आधुनिक मीरा कहते हैं।

महादेवी जी एक संपन्न और सुशिक्षित परिवार की हैं। कविता का बीज माता ने बोया था—बचपन में ही। आज तो वह बीज अग-जग छा गया है। आपने एम. ए. परीक्षा पास की और महिला-विद्यापीठ, प्रयाग की प्रिन्सिपल बनीं। आप अब भी उस पद पर हैं। आपकी वजह विद्यापीठ की अच्छी ख्याति हुई है। थोड़े सालों तक आप चाँद की संपादिका भी थीं। कोई शक नहीं कि आपने बहुत उत्तमता के साथ संपादन किया।

आपका जन्म १९०७ ई. में हुआ। अब तक आपकी नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्य गीत, यामा, दीपशिखा—रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं। हालमें 'अतीत के चित्र' नाम से एक गद्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुआ है। कवियित्री यहाँ कविता-लोक से उतर कर समाज में आयी है।

श्रीमती महादेवी रहस्यवादी कवि हैं। इस दृश्य जगत से

दूर दार्शनिक जगत की इनकी कविता पूर्णतः भावमय होती है। विषाद या करुणा की छाया तो प्रत्यक्ष है ही। आपके बारे में रामनरेश त्रिपाठी लिखते हैं—'मीरा के बाद हिन्दी के किसी कवि ने विरह का ऐसा उन्मादकारी वर्णन नहीं किया है जैसा महादेवी जी ने।'

श्रीमती वर्मा कवियित्री और लेखिका ही नहीं, सुन्दर चित्रकार भी हैं। 'सांध्यगीत' और 'दीप-शिखा,' में आपके सुन्दर चित्र भी छपे हैं। छपाई व सुन्दरता की दृष्टि से तो 'दीप शिखा' एक अमूल्य वस्तु है।

मुरझाया फूल

था कली के रूप, शैशव में अहो सूखे सुमन ।
हास्य करता था खिलाती अंक में तुझ को पवन ॥
खिल गया जब पूर्ण तू मंजुल सुकोमल पुष्पवर ।
लुब्ध मधु के हेतु मँडराने लगे आने भ्रमर ॥

स्निग्ध किरणें चन्द्र की तुझ को हँसाती थीं सदा ।
रात तुम पर वारती थी मोतियों की संपदा ॥
लोरियाँ गा कर मधुप निद्रा-विवश करते तुझे ।
यत्न माली के रहे आनन्द से भरते तुझे ॥

कर रहा अठखेलियाँ इतरा सदा उद्यान में।
अन्त का यह दृश्य आया था कभी क्या ध्यान में॥
सो रहा तू अब धरा पर शुष्क बिखराया हुआ।
गन्ध कोमलता नहीं मुख मंजु मुरझाया हुआ॥

आज तुझ को देख कर चाहक भ्रमर धाता नहीं।
लाल अपना राग तुझ पर प्रात बरसाता नहीं॥
जिस पवन ने अंक में ले प्यार था तुझ को किया।
तीव्र झोंके से सुला उस ने तुझे भू पर लिया॥

कर दिया मधु और सौरभ दान सारा एक दिन।
किंतु रोता कौन है तेरे लिए दानी सुमन!
मत व्यथित हो फूल! किस को सुख दिया संसार ने!
स्वार्थमय सब को बनाया है यहाँ करतार ने॥

विश्व में हे फूल! तू सब के हृदय भाता रहा।
दान कर सर्वस्व भी तू हाय हर्षाता रहा॥
जब न तेरी ही दशा पर दुख हुआ संसार को।
कौन रोयेगा सुमन! हम से मनुज निस्सार को॥

श्री भगवती चरण वर्मा

वर्माजी प्रगति शील लेखक और कवि हैं।—कलकत्ते से सुन्दर विचार पूर्ण साप्ताहिक—"विचार" का संपादन कर रहे थे। पत्र बड़ा अच्छा निकलता था। मगर आर्थिक संकट की वजह बन्द हो गया।

आप प्रतिभाशाली व्यक्ति हैं। आपके मधुकण, प्रेम-संगीत, मानव आदि कविता संग्रह; चित्रलेखा, तीन वर्ष, उपन्यास और इंस्टालमेंट तथा दो-बाँके कहानी संग्रह निकल चुके हैं। 'चित्र-लेखा' उपन्यास का सुन्दर बोलपट भी तैयार हुआ है।

आपकी रचनाओं में ओज और प्रसाद गुण रहता है। वर्णनात्मक कविता भी आपकी बड़ी अच्छी होती है। पीड़ित, दलित मानव ही आपकी रचनाओं के प्रधान आधार हैं।

आपकी भाषा चलती हुई, मुहावरेदार होती है। संस्कृत या फ़ारसी का अनावश्यक बोझ उस पर लदा नहीं होता। भाषा में जान रहती है।

आप बी.ए., एल-एल.बी. हैं, मगर वकील नहीं। आपका जन्म सन् ई. १९०३ में हुआ।

दीवानों का संसार

हम दीवानों की क्या हस्ती
हैं आज यहाँ कल वहाँ चले,
मस्ती का आलम साथ चला
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

आए बन कर उल्लास अभी
आँसू बन कर बह चले अभी।

सब कहते ही रह गये, अरे
तुम कैसे आये कहाँ चले?
किस ओर चले? यह मत पूछो
चलना है, बस इसलिए चले।

जग से उसका कुछ लिए चले
जग को अपना कुछ दिए चले,

दो बात कही, दो बात सुनी
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए।

छक कर सुख दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिए चले!
हम भिखमंगों की दुनियाँ में
स्वच्छंद लुटा कर प्यार चले;
हम एक निशानी-सी उर पर
ले असफलता का भार चले।

हम मान-रहित, अपमान-रहित
जी भरकर खुल कर खेल चुके।

वह हँसते हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाज़ी हार चले!
हम भला बुरा सब भूल चुके
नत-मस्तक हो मुख मोड़ चले;
अभिशाप उठा कर होठों पर
वरदान दृगों से छोड़ चले,

अब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहें रुकने वाले !

हम स्वयं बँधे थे और स्वयं
हम अपने बँधन तोड़ चले !

दीवाना - पागल
हस्ती - अस्तित्व Existence
आलम - दुनियाँ

छककर - मन भरकर
खुलकर - संकोच रहित होकर

श्री उदयशंकर भट्ट

श्री भट्ट जी लाहौर कालेज में हिन्दी के अध्यापक हैं। आपने चार-पांच काव्य, आठ-दस नाटक और कई एकांकी लिखे हैं। आपके काव्य भावना-प्रधान होते हैं। नाटक तो बहुत प्रसिद्ध हो चुके हैं।

भाषा भी संस्कृतमय और सुन्दर होती है। आपसे अभी बहुत आशायें हैं।

विजयादशमी

आज पराजय के पथ में यह कैसी भूली विजय मिली,
सदियों की ज़ंजीर झनझना याद दिलाती कौन चली?

मेरी कारा टूट जायगी अरी झाँकते ही तेरे।
मुश्किल से अरमान सुलाए, अभी रुके आँसू मेरे।
स्मृतियों से पहले की स्मृतियो, तुम्हें बुलाने कौन गया?
हमें दासता में मरने दो, क्यों दुहराती पाठ नया!

तुम ने रामचरण की रज ले विजयावलियाँ लिख डालीं।
जिनकी हुंकृति पर सब जग की आँखों की बिखरी लाली।
सुधि है कलियों का झंझा के झोंकों से विजयी होना।
और दुधमुहों के थप्पड़ से सिंहों का सुध-बुध खोना।

सुधि है छोटे से रघु द्वारा इन्द्रासन कँप जाने की
सुधि है क्षात्र-तेज के आगे भूमंडल थर्राने की!
सुधि है केवल हाथ उठा कर प्रण करते वसुधाधर की!
सुधि है शोणित भरनेवाले रणचण्डी के खप्पर की!

स्मृतियाँ कुछ कुछ अभी बची हैं विश्व विजय करनेवाली।
अब भी कभी कभी रोती हैं उन पर आँखें मतवाली।
कल ही तो उस चन्द्रगुप्त के सम्मुख यूनानी हारे
कल ही तो अशोक का पद रज सिर धरते भूपति सारे।
पर कवि उन्हें याद करने का तुम को है अधिकार नहीं।
भूलो, उन पवित्र चरणों की स्मृति का यह संसार नहीं।
आज सभी कुछ उलट गया है उलटी हवा ज़माने की।
आज यहाँ रोने की बारी, लज्जित हो मर जाने की।
अब जीवन में पराजयों का जमघट ही तो बाकी है।
तब तो मृत्यु मृत्यु में थी, अब जीवन में भी झाँकी है।

रहने दो मत याद दिलाओ उन घड़ियों की मतवाली।
ज़ंजीरें चटचटा उठेंगीं सदियों की काली काली।
आज विजय की याद दिलाना पराजयों पर रोना है।
एक कलंकित पतित जाति का शुभ्र शुभ्रतर होना है।

श्री आरसी प्रसाद सिंह

श्री आरसी नौजवान लोकप्रिय कवि हैं। अभी आप मुश्किल से ३० साल के हैं (१९१३ ई. में जन्म हुआ)। संस्कृत साहित्य का विशेष अध्ययन किया है। 'कलापी' नाम की कविता पुस्तक निकली है जो आपकी प्रतिभा का परिचय देती है। 'आरसी' नामक संग्रह भी निकल चुका है।

आपमें कवि की सच्ची प्रतिभा व भावुकता है। जवानी की उमंग भी है। आप कल्पना और सौंदर्य के कवि हैं। भाषा-माधुर्य में आप बड़े बड़ों से आगे बढ़ गये हैं।

आप इरावत, (दरंभगा) बिहार के निवासी हैं।

शतदल

प्रमुदित कर पद्मों के प्राण
करता कलियों को मधु-दान,
चढ़ विहगों की स्वर लहरी पर आता है जब स्वर्ण-बिहान,
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरी ही मुस्कान!

भांति भांति के धर वर-वेश
अनुरंजित कर गगन-प्रदेश,
लहराते जब काले-काले बादल-दल निर्बाध, अशेष,
कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरे ही घन केश।

शीतल, कोमल किरणों का वन
खोल अमरपुर का वातायन,

उझक झांकता है जब हिमकर पुलकित कर वसुधा के तन-मन,
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरा ही आनन !

उतर हिमालय से विस्फीत
शैल शिलाओं पर श्री-पीत,

गुंजित करती तानों से जब निर्झरिणी वन-प्रांत पुनीत
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तो तेरे ही संगीत !

चूम शून्य के अधर-प्रवाल
ताल ताल पर हो बेहाल,

नर्तन करती रत्नाकर की तरल तरंगावलि उत्ताल
मैं कह उठता हूँ मन-ही-मन यह तेरा ही हृदय विशाल !

स्वर्ण-विहान - सोने का रंगवाला सबेरा (Golden morning.)
तेरी ही मुस्कान - भगवान की मुस्कुराहट
अनुरंजित - रंगा हुआ
निर्बाध - बाधारहित
अशेष - अन्तहीन, बहुत ज्यादा
वातायन - खिड़की
उझकना - देखने के लिये सर उठाना
विस्फीत - बढ़ी हुई, उभरी
श्रीपीत - सौंदर्य से भरी
प्रवाल - मूँगा
तरल - चंचल
उत्ताल - ऊँची
(इस पद्य में कवि ने यह बतलाया है कि प्रकृति का सुंदर से सुंदर दृश्य भगवान की प्रतिमा ही है। सब जगह उसी का जल्वा है)

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला"

'निराला' जी सार्थक नाम हैं। उन्होंने हिन्दी में कई निराली बातों का प्रचार किया। पुराने छन्द वग़ैरह के नियमों को तोड़कर आपने नये नये छन्द रचे। 'मुक्त छन्द' के आप ही जन्मदाता (हिन्दी में) माने जाते हैं।

आप हिन्दी भाषा बोलनेवाले हैं। मगर पिताजी बंगाल में नौकरी करते थे अतः इनका जन्म और शिक्षा वग़ैरह वहीं हुई। आप बंगला, संस्कृत और अंग्रेज़ी साहित्य के अच्छे विद्वान हैं। दर्शन शास्त्र (वेदान्त) के भी बड़े पंडित हैं। स्वामी विवेकानन्द के विचारों से आप बहुत प्रभावित हुए हैं। रवीन्द्रनाथ की कृतियों का आपने अच्छा अध्ययन किया और समालोचनात्मक ग्रन्थ लिखा।

आपकी कविता पर संस्कृत, बंगला, अंग्रेज़ी का और विचारों में दार्शनिकता का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। भाषा भी संस्कृत बहुल है। अतः जब विचार दार्शनिक होते हैं तो वहाँ समझना कठिन हो जाता है। आप सब तरह के विषयों पर, सब रसों में सफलतापूर्वक लिखते हैं। ख़ासकर वीर और करुण रस आपका अच्छा उतरता है।

अनामिका, सेवा, परिमल, वगैरह कविता संग्रह निकल चुके हैं। इसके अलावा आपने कहानियाँ उपन्यास और निबंध भी लिखे हैं। अप्सरा, अलका, कुल्लीभाट वगैरह उपन्यास मशहूर हो चुके हैं। मगर यहाँ भी भाषा की क्लिष्टता कुछ खटकती है। 'तुलसीदास' काव्य आपकी नवीनतम कृति है।

आप 'समन्वय' नामक दार्शनिक मासिक पत्र का सफलता पूर्वक संपादन कर चुके हैं। अभी आप ज़्यादा कर लखनऊ में रहते हैं।

आपका जन्म बंगाल में ई. स. १८९८ में हुआ।

गीत

सखि, वसंत आया,
भरा हर्ष वन के मन,
नवोत्कर्ष छाया ।

किसलय-वसना, नव-वय-लतिका
मिली मधुर प्रिय-उर, तरु-पतिका,
मधुप - वृंद बंदी,
पिक-स्वर नभ सरसाया ।

लता - मुकुला - हार - गंध - भार भर
बही पवन बंद मंद-मंदतर,
जागी नयनों में वन-
यौवन की माया ।

आवृत सरसी-उर-सरसिज उठे,
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण - शस्य अंचल
पृथ्वी का लहराया ।

किसलय-वसना - नये पल्लव रूपी वसन (कपड़ा) पहननेवाली

नव-वय - नयी उम्र

तरु-पतिका - तरु (वृक्ष) जिसका पति हो ।

वंदी - कैदी

पिक - कोयल

लता-मुकुला-हार-गंध-भार-भर - पुष्पिता लता की सुगंधि से भरकर

आवृत - ढंका हुआ

सरसी - तालाब

सरसिज - कमल

केशर के केश - (फूलों के अन्दर बाल की तरह के रेशे) केसर के समान केश ।

स्वर्ण-शस्य - सुनहले रंग के अनाज के पौदे

(वसंत के आने के समय का वर्णन है। फूली हुई लतिकायें वृक्षों से से लिपटी हैं। भौंरे गुँजार कर रहे हैं। सुगन्धित हवा बह रही है। तालाबों में सुन्दर कमल खिले हैं। अनाज के पौदों से पृथ्वी माता का सुनहरा अंचल लहरा रहा है)

भिखारिन

श्री शंभुदयाल सक्सेना, एम. ए. 'साहित्य रत्न'

रीता कर सम्मुख फैलाये
आँखों में दुख-दैन्य दुराये
अश्रुगुच्छ पलकों पर छाये
उर से क्षुधा-तृषा चिपकाये,
दर पर आई एक भिखारिन,
लाई भाव अनेक भिखारिन।

इतनी करुणा उस पर आये
भर भर आये, ढर ढर जाये
तन नहलाये, मन नहलाये
सप्तलोक, त्रिभुवन नहलाये,
है अभाव की मूर्ति भिखारिन,
सजल कल्पना-पूर्ति भिखारिन।

कोमल करुणा कण्ठ भरा है
घाव हृदय का अभी हरा है
सोया था सो दुख उभरा है
छल-छल, छल-छल छलक पड़ा है,
　　अश्रुमयी सन्तप्त भिखारिन,
　　जीवन-सुधा-अतृप्त भिखारिन।

जो कुछ होनी थी सब होली
अब है उसकी खाली झोली
कहाँ गई वह कुंकुम रोली
कहाँ गई मधु-मिश्रित बोली?
　　थामे दुख की डोर भिखारिन
　　खोज रही वह छोर भिखारिन।

झीना अंचल धूलि भरा है
सूना नभ है, शून्य धरा है
सूनापन पथ में पसरा है
हाथ बढ़ा, पर हृदय डरा है,
　　असहाया निरुपाय भिखारिन,
　　विवश विकल कृशकाय भिखारिन।

कृश शरीर, मन दुर्बलतम है
मुख पर मलिन विषाद विषम है
उर में लिये कौन-सा ग़म है
छू लेता जो अन्तरतम है ?
पाहन करती द्रवित भिखारिन,
करती पवि प्रस्रवित भिखारिन !

रोने में कुछ एक कसक है
सुनकर होता जी धक धक है
कैसा अश्रु-प्रवाह अथक है
भरा हुआ जो ऊपर तक है,
सकरुण एक हिलोर भिखारिन,
रही जगत को बोर भिखारिन ।

दुख का ताना दुख का बाना
बुन बुनकर दिन रात बिताना
रोदन ही में सतत नहाना
और उसी में घुल घुल जाना,
है सावन की नदी भिखारिन,
अश्रुभार से लदी भिखारिन ।

कुसुम-कली-सा मोहक छौना
माँ का प्यारा मञ्जु खिलौना
गोरा-पीला, मधुर सलौना
सुख की अञ्जलि, दुख का दौना,
लिये अंक में चली भिखारिन,
भूल गयी गृह-गली भिखारिन।

माँ की गोदी बनी हिंडोला
अंचल ही है जिसका चोला
सुख है एक रुदन का रोला
मगन उसी में भोला-भोला,
पा यह अनुपम वित्त भिखारिन,
है कृतार्थ हतचित्त भिखारिन।

भूख-प्यास मिल आँखें मूँदें
चूस पसीने की दो बूँदे—
करता है जी उछलें कूदें
दुखिया माँ के दुख को खूँदें,
लख कर हुई अधीर भिखारिन,
सकी न अन्तर चीर भिखारिन?

माँ का हृदय सदय हो आया
कर सयत्न अञ्चल की छाया
घोर घाम से उसे बचाया
सुख निन्दिया में लाल सुलाया,
बरसाती है प्यार भिखारिन,
उठा रही पर ज्वार भिखारिन।

कोई उस पर कर दो दाया
लो बादल का जी भर आया
लखकर मृदुल कुसुम कुम्हलाया
छाता बनकर नभ में छाया,
प्रकृति सदय हो रही भिखारिन,
वसुधा जल बन बही भिखारिन।

गीला गीला गान सुनाया
तप्त वेदना-रस से ताया
दिल के अन्दर दिल पहुँचाया
हृदय-सिन्धु में ज्वार उठाया,
है दुख का आख्यान भिखारिन,
सींच रही है प्राण भिखारिन।

गा-गा फिर से गान भिखारिन
कर ले स्वर-संधान भिखारिन
छिपा न अब अरमान भिखारिन
मन चाहा ले दान भिखारिन,
ऐ जीवन-सुख-साँझ भिखारिन,
आजा मन के माँझ भिखारिन ।

रीता कर - खाली हाथ
दुराये - छिपाये
दर - दरवाज़ा
भर भर आये - आँसू भर आना
ढर ढर जाना - आँसू गिरना
जीवन-सुधा-अतृप्त - जीवन रूपी अमृत जिसे प्राप्त न हुआ हो ।
कुंकुम-रोली - तिलक (शृंगार)
डोर - रस्सी
पसरा - फैला
कृशकाय - दुर्बल शरीरवाली
पवि - वज्र, (कठोर)
प्रस्रवित - गलना
बोरना - डुबाना
ताना-बाना - कपड़े की लंबाई और चौड़ाई की तरफ़ का तागा
छौना - लड़का
मंजु - सुंदर
दौना - दोना, पत्ते का बनाया हुआ पात्र
हिंडोला - झूला
रोला - शोर, कोलाहल
वित्त - धन
हतचित्त - उदास, दुखी
खूँदना - कुचलना
अन्तर - कलेजा
ज्वार - उफान, ज्वाला
दाया - दया

ताया - गरम

आख्यान - कहानी

जीवन-सुख-सांझ - जीवन के सुख का सांझ - में; अन्दर [अन्त
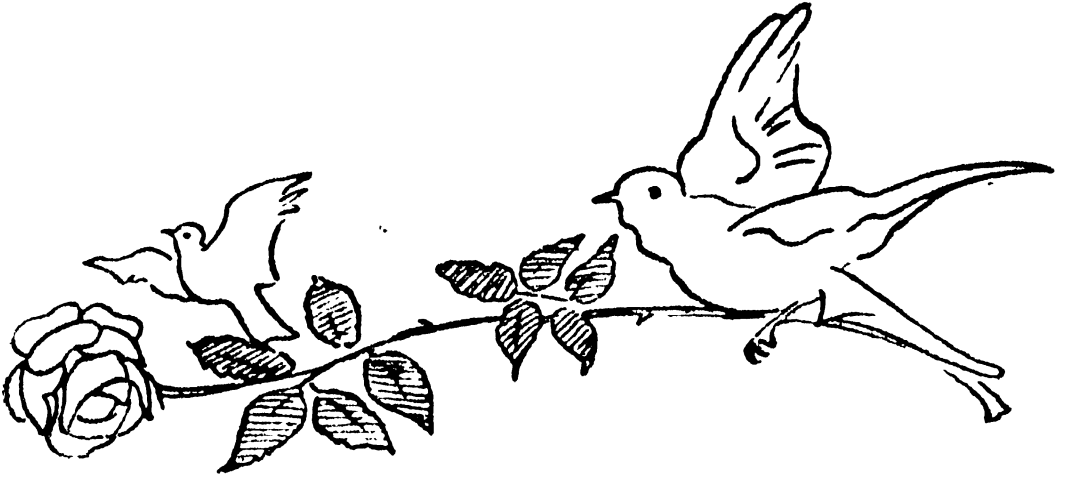
राहुल-जननी

श्री मैथिलीशरण गुप्त

चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !
रोता है, अब किसके आगे ?

तुझे देख पाते वे रोता,
मुझे छोड़ जाते क्यों सोता ?
अब क्या होगा ? तब कुछ होता,

सोकर हम खोकर ही जागे !
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !

बेटा, मैं तो हूँ रोने को,
तेरे सारे मल धोने को;
हँस, तू है सब कुछ होने को,

भाग्य आयँगे फिर भी भागे,
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे !

तुझको क्षीर पिला कर लूँगी,
नयन-नीर ही उनको दूँगी,
पर क्या पक्षपातिनी हूँगी?
मैंने अपने सब रस त्यागे!
चुप रह, चुप रह, हाय अभागे!

राहुल - महात्मा बुद्ध का पुत्र
तब कुछ होता - (भाव—जब वे जा रहे थे तब कुछ फ़ायदा होता)

सब रस - सब भोगविलास

दूसरी क्यारी

अख़्तर शीरानी

जनाब अख़्तर शीरानी के बारे में श्री उपेन्द्रनाथ 'अश्क' ने लिखा है—"अख़्तर पंजाब का वह जवान शायर है जिसने उर्दू में 'रूमानी शायरी' (रोमांटिक पोयट्री) का सूत्रपात किया है। उसकी कई कविताओं में आप अपने आपको चाँद सितारों की घाटियों में पायेंगे—जहाँ फूलों की सुगंधि से बयार उन्मत्त है, जहाँ संसार का कोलाहल चुप हो गया है, और जहाँ स्निग्ध ज्योत्स्ना की चादर ओढ़े 'रीहाना', 'मरजाना' या 'सलमा' कवि की थकी हुई रूह को शांति प्रदान करने आती है। 'अख़्तर' ने ठीक अर्थों में चाहे गीत न लिखे हों पर उसकी अधिकांश नज़्में गीतों की-सी मिठास रखती हैं और पंजाब के नौजवान उन्हें गा-गा कर झूमा करते हैं।"

ओ देस से आनेवाले !

ओ देस से आनेवाले बता
किस हाल में हैं याराने-वतन ?
क्या अब भी वहाँ के बाग़ों में मस्ताना हवायें आती हैं ?
क्या अब भी वहाँ के पर्बत पर घनघोर घटायें छाती हैं ?
क्या अब भी वहाँ की बरखायें वैसी ही दिलों को भाती हैं ?
ओ देस से आनेवाले बता !

क्या अब भी वतन के वैसे ही सरमस्त नज़ारे होते हैं ?
क्या अब भी सुहानी रातों के वह चाँद वो तारे होते हैं ?

हम खेल जो खेला करते थे, क्या अब भी वो सारे होते हैं?
ओ देस से आनेवाले बता!

क्या शाम पड़े सड़कों पै वही दिलचस्प अंधेरा होता है?
औ' गलियों की धुंधली शमओं पर सायों का बसेरा होता है?
या जागी हुई आँखों को ख़ुमार और ख़्वाब ने घेरा होता है?
ओ देस से आनेवाले बता!

क्या अब भी महँकते मन्दिर से नाक़ूस की आवाज़ आती है?
क्या अब भी मुक़द्दस मस्जिद पर मस्ताना अज़ाँ थर्राती है?
औ' शाम के रंगी सायों पर एक अज़मत-सी छा जाती है?
ओ देस से आनेवाले बता!

क्या अब भी वहाँ के पनघट पर पनहारियाँ पानी भरती हैं?
अंगड़ाइ का नक़शा बन-बनकर सब माथे पै गागर धरती हैं?
औ' अपने घरों को जाते हुए हँसती हुई चुहलें करती हैं?
ओ देस से आनेवाले बता!

बरसात के मौसम अब भी वहाँ वैसे ही सुहाने होते हैं?
क्या अब भी वहाँ के बाग़ों में झूले औ' गाने होते हैं?
क्या अब भी कहीं कुछ देखते ही नौ-उम्र दिवाने होते हैं?
ओ देस से आनेवाले बता!

क्या अब भी वहाँ बरसात के दिन बाग़ों में बहारें आती हैं?
मासूमो-हसीं दोशीजायें बरखा के तराने गाती हैं?
औ' तीतरियों की तरह से रंगी झूलों पर लहराती हैं?
ओ देस से आनेवाले बता!

क्या गाँव में अब भी वैसी ही मस्ती भरी रातें आती हैं?
देहात की कमसिन माहवशीं तालाब की जानिब जाती हैं?
औ' चाँद की सादह रोशनी में रंगीन तराने गाती हैं?
ओ देस से आनेवाले बता!

क्या अब भी किसी के सीने में बाक़ी है हमारी चाह बता?
क्या याद हमें भी करता है, अब यारों में कोई आह, बता?
ओ देस से आनेवाले बता, लिल्लाह बता, लिल्लाह बता!
ओ देस से आनेवाले बता!

यारने वतन - देश के मित्र
सरमस्त - आनंदसे भरे
खुमार - आलस्य, थकावट
ने घेरा होता है -(यह प्रयोग पंजाबी [है।
नाक़ूस - शंख
मुक़द्दस - पवित्र

अज़मत - महत्ता, बड़प्पन
नौउम्र - नौजवान
दोशीजायें - स्त्रियाँ
माहवशीं - चन्द्रमुखी
सादह - सादा

मज़दूर

काम से फ़ारिग़ नहीं दम-भर भी ऐ मज़दूर तू,
इस पै भी इफ़लास से किस दर्जा है मज़बूर तू।
दुख पै दुख दिन रात सहना ही तेरी क़िस्मत में है,
जीते जी मर मर के रहना ही तेरी क़िस्मत में है।
रख रहा है सारी दौलतमन्दियों की लाज तू,
ख़ुद मगर है कौड़ी-कौड़ी के लिये मुहताज तू।
कपड़े-लत्ते हों कहाँ से तन-बदन के वास्ते?
चीथड़े तक जब नहीं तेरे कफ़न के वास्ते।
धूप, पानी और हवा का ज़ुल्म है तुझ पर कहीं,
औ' कहीं तू लुत्फ़ भी उनसे उठा सकता नहीं।

है कहीं एक तंग हुजरा तेरे रहने के लिये,
और कहीं इक घर जो घर है सिर्फ़ कहने के लिये।
कारख़ानों में जो कल बनकर घिसा जाता है तू,
काम की चक्की में भी बाहर पिसा जाता है तू।
सख़्तियों की हद नहीं फिर भी इसी इक हाल तक,
मालिकों की सख़्तियाँ गोया हैं ज़ख़्मों पर नमक।
अलग़रज़ मिलता नहीं आराम तुझको काम से,
औ' न बेकारी में रह सकता है तू आराम से।

फ़ारिग - निवृत्त
इफ़लास - दरिद्रता, गरीबी
हुजरा - कोठरी, कमरा

अलग़रज़ - ग़र्ज़ यह कि, मतलब यह कि।

महाकवि अकबर इलहाबादी

आपका पूरा नाम था सैयद अकबर हुसेन रिज़वी। सन् १८४६ ई. नवम्बर में इलहाबाद ज़िले में आपका जन्म हुआ था। शिक्षा गरीबी की वजह मामूली ही हुई थी। सन् १८६६ ई. में आप नायब तहसीलदार हुए। चार साल बाद हाइ कोर्ट में रिकार्ड-कीपर हुए। फिर आपने वकालत का इम्तिहान पास किया। वकालत की। बादको मुंसिफ़ हुए। १८९४ ई. में सदर आला (सेशन जज) हो गये।

१९२१ ई. में ७५ साल की उम्र में आप कज़ा कर गये।

अकबर मज़हब-परस्त (धर्म-परायण, कट्टर नहीं) मुसलमान थे। अपनी सभ्यता और संस्कृति पर आपको उचित अभिमान था। अन्य धर्मों के प्रति भी आप बड़े ही उदार भाव रखते थे। समाज सुधार के बड़े भारी पक्षपाती थे। अंग्रेज़ी रंग-ढंग की नकल का आप जोरों से विरोध करते थे। आप देशभक्त अव्वल दर्जे के थे।

आपकी कविता बहुत सादा और भावों से भरी होती थी। बहुत बढ़िया व्यंग आपकी शायरी की जान है। हिन्दू-मुस्लिम एका के आप बड़े-हामी थे। आपके शेर और गज़लें लोगों की ज़बान पर रहती हैं।

अक़बर के कुछ शेर

कहता हूँ मैं हिन्दू व मुसलमाँ से यही।
अपनी अपनी रविश पै तुम नेक रहो॥
लाठी है हवाये-दहर पानी बन जाओ।
मौजों की तरह लड़ो, मगर एक रहो॥

*　　　*　　　*

जिस रोशनी में लूट ही की आपको सूझे।
तहज़ीब की तो मैं उसको तजल्ली न कहूँगा॥
लाखों को मिटाकर जो हज़ारों को उभारे।
इसको तो मैं दुनियाँ की तरक़्क़ी न कहूँगा॥

*　　　*　　　*

जान ही लेने की हिकमत में तरक़्क़ी देखी ।
मौत का रोकनेवाला कोई पैदा न हुआ ॥

*　　　　*　　　　*

इतनी आज़ादी भी ग़नीमत है ।
सांस लेता हूँ, बात करता हूँ ॥

रविश - राह, पगडंडी
नेक - भले, अच्छे-अच्छे
हवाये-दहर - दुनियाँ की हवा, परिस्थितियां

मौजों - लहरों
तहज़ीब - सभ्यता
तजल्ली - प्रकाश, रोशनी
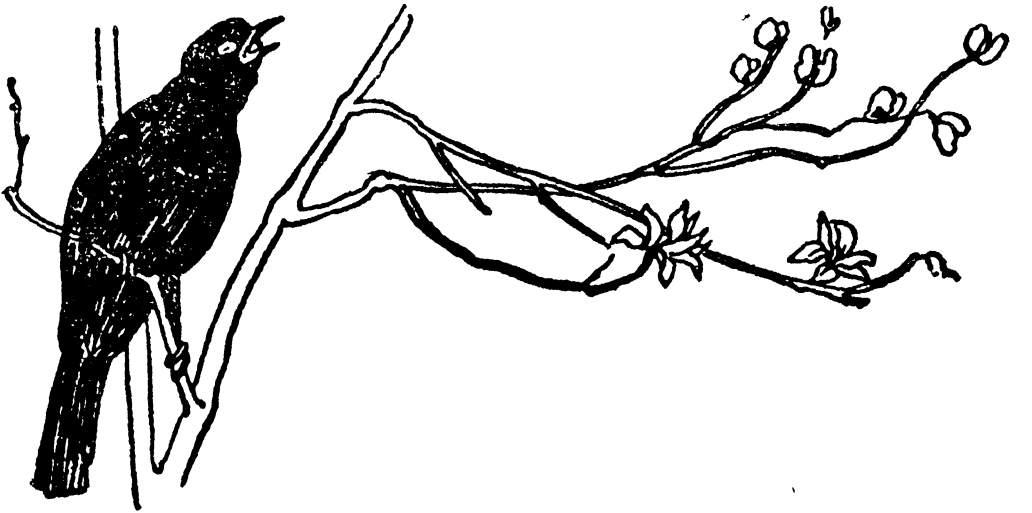
पं० व्रजनारायण 'चकबस्त'

जिस तरह हिन्दी-साहित्य की तरक्क़ी में बहुत से मुसलमानों ने हाथ बँटाया है उसी तरह उर्दू साहित्य की उन्नति में बहुत से हिन्दुओं ने अपनी जान लगाई है। इसलिये यह कहना महज़ गलतफ़हमी है कि उर्दू मुसलमानों की और हिन्दी हिन्दुओं की भाषा है।

पं. व्रजनारायण 'चकबस्त' १८८२ ई. में फैज़ाबाद में पैदा हुए। आपने वकालत पास की। आप पक्के समाज सुधारक और सेवक थे। राजनीति में पं. बिशन नारायण दर के चेले थे। सन् १९२६ में आपकी अचानक मौत हो गई।

'सुबहे-वतन' नामसे आपकी कविता की किताब निकली है। महाकवि दाग़ के ऊपर आपने अच्छी आलोचना लिखी है। कमला नाम से एक ड्रामा भी लिखा है।

आपकी शायरी में देश का मुहब्बत भरा हुआ है। यों तो आपने थोड़ा लिखा है। मगर बहुत ऊँचे दर्जे का। भाषा पर आपका अच्छा अधिकार था। मगर कहीं कहीं वह बहुत मुश्किल हो गयी है।

ख़ाके - वतन

ए! ख़ाके-हिन्द तेरी अज़मत में क्या गुमाँ है।
दरिआए-फ़ैज़े-कुदरत तेरे लिये रवाँ है॥

हर सुबह है यह ख़िदमत ख़ुरशीदे पुर-ज़िया-की।
किरनों से गूंथता है चोटी हिमालया की॥

सारे जहाँ पै जब था वहशत का अब्र तारी।
चश्मो-चिराग़े आलम थी सरज़मीं हमारी॥

गौतम ने आबरू दी इस मुआबिदे-कुहन को।
सींचा लहू से अपने राना ने इस चमन को॥

दीवारोदर से अब तक उनका असर अयाँ है।
अपनी रगों में अब तक उनका लहू रवाँ है॥

अब तक वही कड़क है बिजली की बादलों में।
पस्ती सी आ गयी है, पर दिल के हौसलों में॥

हुब्बे-वतन समाये आँखों में नूर होकर।
सर में ख़ुमार होकर दिल में सुरूर होकर॥

बुलबुल को गुल मुबारक, गुल को चमन मुबारक।
हम बेकसों को अपना प्यारा वतन मुबारक॥

गुंचे हमारे दिल के इस बाग़ में खिलेंगे।
इस ख़ाक से उठे हैं, इस ख़ाक में मिलेंगे॥

गर्दो-ग़ुबार याँ का ख़िलअत है अपने तन को।
मरकर भी चाहते हैं ख़ाके-वतन कफ़न को॥

ख़ाके-वतन - देश की धूल
गुमाँ - अनुमान, संदेह
फ़ैज - फ़ायदा, हित
(भाव—तुम्हारे वास्ते प्रकृति देवी की कृपा की सीमा नहीं है)
ख़ुरशीद - सूर्य

पुर - भरा हुआ
ज़िया - रोशनी
(भाव—हर सुबह सूरज अपनी किरणों से हिमालय रूपी तेरी चोटी गूंथता है)
वहशत - जंगलीपन

अब्र - बादल
तारी - छाया हुआ
चश्मो-चिराग़े - आंख व दीपक
(भाव—जब सारी दुनियाँ अज्ञान और जंगलीपने से भरी थी तब हमारा देश ही दुनियां की आंखें व रोशनी था।)
मुआबिदे-कुहन-पूजनीय पुरानी जगहें

अयां - स्पष्ट
पस्ती - निरुत्साह
हुब्बे-वतन - देश-प्रेम
नूर - प्रकाश
खुमार - नशा
सुरूर - आनंद
गुंचे - कलियां
खिलअत - सम्मानप्रद वस्तु

मौलाना हाली

हर ज़माना साहित्य पर अपना रंग ज़रूर डालता है। १९ वीं सदी हिन्दुस्तान के लिये बड़े मार्के की सदी है। भारतीय जीवन के हर पहलू में इस सदी ने इन्कलाब पैदा कर दिया। फिर भाषा व साहित्य कैसे अछूता रहता? जिस तरह हिन्दी में भारतेंदु के रूप में नयी रोशनी और नये ज़माने ने प्रवेश किया उसी तरह उर्दू साहित्य में वह इनक़लाब मौलाना हाली के रूप में आया।

अल्ताफ हुसैन 'हाली' का जन्म सन् १८३७ ई. में पानीपत (दिल्ली के पास) में हुआ। इनके वालिद इन्हें नौ साल का छोड़ कर मर गये। इसलिये इनकी पढ़ाई-लिखाई ठीक न हो सकी। शुरू में आपने कुछ सरकारी नौकरियाँ कीं। फिर स्कूल में मास्टर हुए, उसके बाद कालेज में आये। दिल्ली में इनकी जान-पहचान सर सैयद अहमद से हुई। सर सैयद का असर आपके विचारों पर बहुत पड़ा।

कविता में आप ग़ालिब के चेले थे। शायरी आपकी देश-भक्ति के भावों से भरी होती थी। आपने पुराने ज़माने से चली

आती हुई शायरी के तर्ज, भाव, शैली सब में बड़ा उलट-फेर कर दिया। एकदम एक नया ढंग अख़्तियार किया। आपकी भाषा बड़ी सरल है। 'मुसद्दसे-हाली' बहुत मशहूर पुस्तक है। उसमें आपकी कविताओं का संग्रह है।

आपने गद्य भी वैसा ही अच्छा और आसान लिखा। ग़ालिब की कविताओं पर बहुत बढ़िया समालोचना लिखी। शेख़ सादी, सर सैयद अहमद व ग़ालिब की जीवनियाँ आपने बड़े अच्छे ढंग से लिखी। नये ज़माने के आप अगुआ या रहनुमा रहे। बाद के सब कवि और लेखकों को आपसे प्रेरणा मिली है।

आपकी मौत ७७ साल की उम्र में हुई।

हुब्बे - वतन

बैठे बेफ़िक्र क्या हो हम वतनो? उठो, अहले-वतन के दोस्त बनो।
मर्द हो तो किसी के काम आओ; वरना खाओ, पियो, चले जाओ।

खाना खाओ तो जी में तुम शरमाओ; ठंडा पानी पियो तो अश्क बहाओ।
कितने भाई तुम्हारे हैं नादार; ज़िन्दगी से है जिनका दिल बेज़ार।

नौकरों की तुम्हारे है जो ग़िज़ा; उनको वह ख़्वाब में नहीं मिलता।
जिस पै तुम जूतियों से फिरते हो; वाँ मयस्सर नहीं वो ओढ़ने को।

खाओ तो पहले लो ख़बर उनकी; जिन पै बिपता है नेस्ती की पड़ी।
पहनो तो पहले भाइयों को पिन्हाओ; कि है उतरन तुम्हारी जिनका बनाव।

मक़बलो, मदबरों को याद करो; खुशदिलो, ग़मज़दों को शाद करो।
जागनेवालो, ग़ाफ़िलों को जगाओ; तैरनेवालो, डूबतों को तिराओ।

तुम अगर चाहते हो मुल्क की ख़ैर ; न किसी हमवतन को समझो ग़ैर ।
हों मुसलमान इसमें या हिन्दू ; बौद्ध मज़हब हो या कि हो ब्रह्मू ।
जाऽफरी होवे या कि हो हनफी ; जैनमत होवे या हो बिशनोई ।
सबको मीठी निगाह से देखो; समझो आँख की पुतलियाँ सबको ।
मुल्क हैं इत्तफ़ाक़ से आज़ाद ; शहर हैं इत्तफ़ाक़ से आबाद ।
हिन्द में इत्तफ़ाक़ होता अगर ; खाते गैरों की ठोकरें क्यों कर ।
क़ौम जब इत्तफ़ाक़ खो बैठी ; अपनी पूंजी से हाथ धो बैठी ।
एक का एक हो गया बदख़्वाह ; लगी गैरों की पड़ने तुम पर निगाह ।
फिर गये भाइयों से जब भाई ; जो न आनी थी वह बला आई ।
कभी तूरानियों ने घर लूटा ; कभी दुर्रानियों ने ज़र लूटा ।
कभी नादिर ने कत्लेआम किया ; कभी महमूद ने गुलाम किया ।
सबसे आख़िर को ले गई बाज़ी ; एक शाइस्ता कौम मग़रिब की ।
मुल्क रौंदे गये हैं पैरों से ; चैन किसको मिला है गैरों से ?
कौम से जो तुम्हारे हैं बरताव ; सोचो ऐ मेरे प्यारे और शर्माव ।
काफ़ले तुमसे बढ़ गये कोसों ; रहे जाते हो सबसे पीछे क्यों ?
काफ़लों से अगर मिला चाहो ; मुल्क और कौम का भला चाहो ।
ग़र रहा चाहते हो इज्ज़त से ; भाइयों को निकालो ज़िल्लत से ।
उनकी इज्ज़त तुम्हारी इज्ज़त है ; उनकी ज़िल्लत तुम्हारी ज़िल्लत है ।

अब न सैयद का इफ्तख़ार सहीह; न ब्राह्मन को शूद्र पर तरज़ीह।
क़ौम की इज्ज़त अब हुनर से है; इल्म से या कि सीमो-ज़र से है।
कई दिन में वह दौर आयेगा; बेहुनर भीख तक न पायेगा।
न रहेंगे सदा यही दिन-रात; याद रखना हमारी आज की बात।
गर नहीं सुनते क़ौल 'हाली' का; फिर न कहना कि कोई कहता था।

हुब्बे-वतन - देश-प्रेम
हम-वतनो - देश के रहनेवालो
अहले-वतन -देश के लोग
नादार - दरिद्र, गरीब
गिज़ा - खाना, आहार
नेस्ती - खाली मन
मक़बलो - भाग्यवानो
मदबरों - अभागों
तिराव - तैराओ
खैर - भलाई

ब्रह्म - ब्रह्मसमाजी
जाऽफरी, हनफी, बिश्नोई-पंथों के नाम
दुर्रानी - अहमदशाह दुर्रानी
शाइस्ता - सभ्य
सैयद - उच्च कुल का मुसलमान
इफ्तख़ार - अभिमान
सहीह - सत्य, ठीक
तरज़ीह - Prefrence.
सीमो-ज़र - धन-दौलत

तीसरी क्यारी

कबीर के दोहे

सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय॥

माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

एक सबद सुखरास है, एक सबद दुखरास।
एक सबद बंधन कटै, एक सबद गल फाँस॥

कुसल कुसल ही पूछते, जग में रहा न कोय।
जरा मुई न भय मुआ, कुसल कहाँ ते होय॥

माटी कहै कुम्हार को, तूँ क्या रूँदै मोहि।
इक दिन ऐसा होइगा, मैं रूँदूँगी तोहि॥

एक सीस का मानवा, करता बहुतक हीस ।
लंकापति रावन गया, बीस भुजा दस सीस ॥

माली आवत देखि कै, कलियाँ कहैं पुकारि ।
फूली फूली चुनि लिये, कालिह हमारी बारि ॥

पिय का मारग सुगम है, तेरा चलन अबेड़ा ।
नाच न जानै बापुरी, कहै आँगना टेढ़ा ॥

चींटी चावल लै चली, बिच में मिलि गइ दार ।
कह कबीर दोउ ना मिलै, इक ले दूजी डार ॥

साईं इतना दीजिये, जा में कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥

केसन कहा बिगारिया, जो मूँड़ौ सौ बार ।
मन को क्यों नहीं मुँडिये, जा में विषय बिकार ॥

रसहिं छाड़ि छोही गहै, कोल्हू परतछ देख ।
गहै असारहिं सार तजि, हिरदे नाहिं बिबेक ॥

मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार ।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥

तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर फिरि ढूँढ़ै घास॥

हंसा बगुला एक सा, मानसरोवर माँहि।
बगा ढँढोरै माछरी, हंसा मोती खाँहि॥

दुर्बल को न सताइये, जा की मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से, लोह भसम ह्वै जाय॥

ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होय॥

माँगन मरन समान है, मत कोइ माँगौ भीख।
माँगन तें मरना भला, यह सतगुरु की सीख॥

पानी मिलै न आप को, औरन बकसत छीर।
आपन मन निश्चल नहीं, और बँधावत धीर॥

साँचे कोइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय॥

सौ जोजन साजन बसैं, मानों हृदय मंझार।
कपट सनेही आँगने, जानु समुंदर पार॥

कागस सम दुर्जन बचन, रहैं संत जन टारि।
बिजुली परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि॥

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय ॥

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिन को कछू न चाहिये, सोई साहंसाह ॥

बनराय - पेड़
दहुँ - दस
सबद - शब्द, बात
सुखरास - सुख का खज़ाना
मुई - मरी
मानवा - मनुष्य
हीस - गर्व, ईर्ष्या
कै - कर
अबेड़ा - टेढ़ा, ग़लत
बापुरी - बेचारी
(कहावत—नाच न जाने, आंगन टेढ़ा)
दार - दाल
समाय - आजाय (पूरा हो)
केसन - केशों ने
छोही-छिलका, सीठ
परतछ - प्रत्यक्ष

जंजार - जंजाल, झंझट
तुज्झ - तुझ
पुहुपन - पुष्प (बहु०)
कस्तूरी का मिरग - वह हरिन जिसकी नाभि में कस्तूरी रहती है।
बगा - बगुला
ढँढोरै-ढूँढ़ता है
बिना जीव की स्वास - लोहार की भाथी या धौंकनी।
आपा - घमण्ड, अभिमान
बकसत - बख्शते हैं, देते हैं
पतीजई - विश्वास करता है
पतियाय - ,,
गोरस - दूध-दही
जोजन - चार कोस का एक योजन
मंझार - मध्य में
करगस - तीर

तुलसी के दोहे

जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम ।
तुलसी कबहूँ होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम ॥

रामनाम-मनि-दीप धरु, जीह-देहरी-द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरौ, जौ चाहसि उजियार ॥

सत्य बचन, मानस बिमल, कपट रहित करतूति ।
तुलसी रघुबर सेवकहिं, सकै न कलिजुग धूति ॥

बाधक सब सब के भये, साधक भये न कोइ ।
तुलसी राम कृपालु ते, भलो होइ सो होइ ॥

होइ अधीन जाँचै नहीं; सीस नाइ नहिं लेई;
ऐसे मानी माँगनहिं; को बारिद बिनु देई ॥

असन बसन सुत नारि सुख; पापिहुँ के घर होइ।
सन्त समागम, रामधन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥

तुलसी संत सुअंब तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥

भगत, भूमि, भूसुर, सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहिं जगजाल॥

बारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल।
बिनु हरि-भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल॥

बचन बेष तें जो बनै, सो बिगरै परिनाम।
तुलसी मनतें जो बनै, बनी बनाई राम॥

सुख-जीवन सब कोउ चहत, सुख-जीवन हरि हाथ।
तुलसी दाता माँगनेउ, देखियत अबुध अनाथ॥

दीरघ रोगी, दारिदी, कटु बच, लोलुप लोग।
तुलसी प्रान समान जौं, तऊ त्यागिबे जोग॥

तुलसी जो कीरति चहँहि; पर कीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि हैं; मुये न मिटिहैं धोइ॥

नीच चंग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरी परत, खैंचत चढ़त अकास॥

भलो भलाई पै लहै, लहै निचाई नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु॥

मिथ्या माहुर सज्जनहिं, खलहिं गरल सम साँच।
तुलसी छुवत पराइ ज्यों, पारद पावक आँच॥

पियहिं सुमन रस अलि विटप, काटि कोल फल खात।
तुलसी तरुजीवी जुगल, सुमति कुमति की बात॥

मुखिया मुखसो चाहिये, खान पान को एक।
पालै पोसै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक॥

तुलसी अपनो आचरण, भलो न लागत कासु।
तेहि न बसात जो खात नित, लहसनहूँ को बासु॥

आपु आपु कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
तुलसी सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ॥

जड़-चेतन गुण-दोष-मय, बिस्व कीन्ह करतार।
संत-हंस गुन गहहिं पय, परिहरि बारि-बिकार॥

सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप॥

बरषि बिस्व हरषित करत, हरत, ताप, अघ, प्यास।
तुलसी दोष न जलद को, जो जल जरै जवास॥

परसुख-संपति देखि सुनि, जरहिं जे जड़ बिनु आगि ।
तुलसी तिनके भाग तें, चलै भलाई भागि ॥

आवत ही हर्ष नहीं, नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह ॥

तहँ - वहां
कबहूँ - कभी
इकठाम - एक जगह
जीह-देहरी-द्वार - जीभ रूपी देहली के दरवाज़े पर
(भाव—जीभ से रामनाम लेने से अन्दर (आत्मा) और बाहर (वातावरण) साथ ही प्रकाश (ज्ञान) फैलता है।)
जौ - यदि
उजियार - उजेला
धूर्ति - धोखा देना
जाँचै - माँगे
लेई - लेता है।
देई - देता है
दोइ - दोनों (सत्संग और रामधन)
परहेत - दूसरे के लिये
हनत - मारते हैं
धरि - धारणकर
सुनत - सुनने से
बरु - चाहे
अपेल - जो टाला न जा सके
तें - से (पंचमी)
सो - वह
कोउ - कोई
मांगनेऊ - माँगनेवाला
देखियत - दीखता है
कटु-बच - कड़वी बात बोलनेवाला
तऊँ - तब भी
मुये - मरने पर
चंग - पतंग, गुड्डी
ढीलि देत - ढीला करने पर
खैंचत - खींचते ही
भलो - भला आदमी
सराहिय-तारीफ़ कीजिये
मीचु - मौत

माहुर - विष
पराइ - भाग जाता है
तरुजीवी - पेड़ से जीनेवाले
सो - सा, जैसा
कासु - किसे, किसको
बसात - गन्ध आना
बासु - गन्ध
आपुकहँ - अपने लिये
अपने कहँ - अपने लोगों के लिये
गहहिं - ग्रहण करते हैं
परिहरि - छोड़कर
करनी करहिं - काम करते हैं
जनावँहि - बताते हैं, गिनाते हैं
जवास - एक कटीला पौधा जो बरसात में सूख जाता है
मेह - बादल

रहीम के दोहे

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम परकाज-हित, सम्पति सँचहि सुजान ॥

रहिमन देख बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि ।
जहाँ काम आवै सुई, कहा करै तरवारि ॥

धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम किहि काज ।
जिहिं रज मुनि-पत्नी तरी, सोइ ढूँढ़त गजराज ॥

सर सूखे पंछी उड़ै, औरे सरन समाहिं ।
दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कहँ जाहिं ॥

जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ तितही इतराय ।
प्यादे से फरज़ी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन कूर बबूर॥

ससि, सकोच, साहस, सलिल, मान, सनेह, रहीम।
बढ़त बढ़त बढ़ि जात है, घटत घटत घटि सीम॥

नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पशु तें अधिक, रीझेहु कछू न देत॥

रहिमन बहु भेषज करत, व्याधि न छाँड़त साथ।
खग मृग बसत अरोग बन, हरि अनाथ के नाथ॥

बड़े बड़ाई ना करैं, बड़े न बोलैं बोल।
रहिमन हीरा कब कहै, लाख टका है मोल॥

पावस देखि रहीम मन, कोइल साधे मौन।
अब दादुर बक्ता भए, हम को पूछत कौन॥

रहिमन कठिन चितान ते, चिन्ता को चित चेत।
चिता दहति निर्जीव को, चिन्ता जीव-समेत॥

रहिमन बात अगम्य की, कहन-सुनन की नाहिं।
जो जानत सो कहत नहीं, कहत सो जानत नाहिं॥

रहिमन तब तक ठहरिये, दान, मान, सनमान।
घटत मान जब देखिये, तुरतहि करिय पयान॥

रहिमन जिह्वा बावरी, कहि गइ सरग-पताल।
आपु तौ कहि भीतर भई, जूती खात कपाल॥

कहि रहीम धन बढ़ि घटै, जात धनिन की बात।
घटै-बढ़ै उनको कहा, घास बेंचि जे खात॥

खर्च बढ़ो रोज़ी घटी, नृपति निठुर मन कीन।
रहिमन वे नर का करैं, ज्यों थोरे जल मीन॥

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मद-पान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान॥

जब लगि बित्त न आपने, तब लगि मित्त न कोइ।
रहिमन अम्बुज अम्बु बिन, रवि ताकर रिपु होइ॥

जे ग़रीब पर हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई-जोग॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, सम्पत्ति मिलति रहीम।
पेट लागि बैराट घर, तपत रसोई भीम॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाँड़त छोह॥

जेहिं अंचल दीपक दुरो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्त सत्रु ह्वै जात॥

रहिमन प्रीति सराहिए, मिले होत रँग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै, तजै सफ़ेदी चून॥

पियहिं - पीते हैं
संचहिं - जमा करते हैं
बड़ेन - बड़े
डारि - डाल (क्रि०)
तरवारि - तलवार
किहि - किस
मुनि पतनी - अहल्या

(हाथी धूल उठाकर सिर पर रखता है। क्यों?—क्योंकि वह उस चरण-रज को ढूँढ़ता है जिससे अहल्या का उद्धार हुआ था।)

सरन - तालाबों में
समाहिं - समा जाते हैं, चले जाते हैं।
पच्छ - पंख
तितही - वहीं पर
इतराय - गर्व करता है
प्यादे - सिपाही Pawns
फ़रजी - मन्त्री, वज़ीर
टेढ़ो - टेढ़ा, तिरछा

(भाव—शतरंज के खेल में जब सिपाही फ़रजी बनता है तो वह सीधी चाल छोड़कर टेढ़ा चलने लगता है। वही हालत नीच लोगों की है। वे जब बड़े पद पर पहुँचते हैं तो उनमें गर्व की मात्रा बढ़ जाती है।)

का - क्या
मूर - जड़
बबूर - बबूल
सीम - सीमा
नाद - संगीत
रीझि - खुश होकर, रीझकर
हेत - प्रेम
रीझेहू - रीझने पर भी
भखै - खाता है
बमन - कै
बोलैंबोल - डींग मारना

टका - रुपया

दादुर - मेंढक

चितान - चितायें

ते - से (अपादान)

चेत - समझो

अगम्य - अनजान, (अध्यात्म)

पयान - यात्रा, सफर

बावरी - पगली

सरग-पताल - आकाश पाताल (लम्बी-चौड़ी बातें)

बात जात - वचन भंग होता है।

खैर - कत्था, (वह लाल वस्तु जो पान में खायी जाती है।)

दाबे ना दबै - दबाने से, रोकने से नहीं रुकते।

ताकर - उसका

बापुरो - बेचारा

मिताई - मित्रता

सुदामा - कुचेल ब्राह्मण

जोग - योग्य

पेट लागि - पेट के वास्ते

बैराट - राजा विराट

तपत - बनाते

भाव—अगर पुरुषार्थ से संपत्ति मिलती तो क्या भीम जैसे बली को विराट राजा के यहाँ रसोई बनानी पड़ती?

छोह - प्रेम, मोह

(भाव - जाल में पड़ने पर मछलियों को छोड़ जल बह जाता है पर बेचारी मछलियाँ उसके प्रेम में तड़प-तड़पकर मर जाती हैं।)

दुरौ - छिपा

हन्यौ - मारा

सत्रु - शत्रु

(भाव—हवा रहने पर दीपक को आंचल की ओट कर स्त्रियां लेजाती हैं। फिर उसे बुझाने के समय भी आंचल के झटके से ही बुझा देती हैं।)

हरदी - हल्दी, Turmeric.

जरदी - पीलापन

चून - चूना

वृन्द के दोहे

जाही ते कछु पाइये, करिये ताकी आस ।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझत पियास ॥

दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम ।
खेती सूखे बरसिबे, घन को कौनै काम ॥

अपनी पहुँच बिचारि कै, करतब करिये दौर ।
तेतो पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर ॥

विद्या-धन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन ।
बिना डुलाये ना मिलै, ज्यों पंखा को पौन ॥

अति परिचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी, चंदन देत जराय ॥

बुरे लगत सिख के बचन, हिये विचारो आप ।
करुवी भेषज बिन पिये, मिटै न तन की ताप ॥

अति अनीत लहिये न धन, जो प्यारो मन होय ।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारे कोय ॥

सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को, दीपहिं देत बुझाय ॥

समय समझ कै कीजिये, काम वहै अभिराम ।
सैंधव माँग्यौ जीमते, घोरा को कह काम ॥

रोस मिटै कैसे कहत, रिस उपजावन बात ।
ईंधन डारे आग मों, कैसे आग बुझात ॥

अति हठ मत कर हठ बढ़े, बात न करिहै कोय ।
ज्यों ज्यों भीजै कामरी, त्यों त्यों भारी होय ॥

जो जेहि भावै सो भलो, गुन को कछु न विचार ।
तजि गजमुकता भीलनी, पहिरति गुंजा-हार ॥

अपनी अपनी ठौर पर, सोभा लहत बिसेख ।
चरन महावर है भलो, नैनन अंजन-रेख ॥

जाको जैसो उचित तिहिं, करिये सोइ बिचारि ।
गीदर कैसे ल्याइहै, गजमुक्ता गज मारि ॥

कोउ बिन देखे बिन सुने, कैसे कहै बिचार ।
कूप-भेक जानै कहा, सागर को बिस्तार ॥

जाकी ओर न जाइये, कैसे मिलिहै सोइ ।
जैसे पच्छिम दिसि गये, पूरब काज न होइ ॥

स्वारथ के सब ही सगे, बिन स्वारथ कोउ नाहिं ।
सेवैं पंछी सरस-तरु, निरस भये उड़ि जाहिं ॥

कुल सपूत जान्यौ परै, लखि सुभ लच्छन गात ।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥

जो पावै अति उच्च पद, ताको पतन निदान ।
ज्यों तपि तपि मध्याह्न लौं, अस्त होत है भान ॥

मूढ़ तहाँ ही मानिये, जहाँ न पण्डित होय ।
दीपक को रवि के उदै, बात न पूछै कोय ॥

जिहि प्रसंग दूषण लगै, तजिये ताको साथ ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलारी हाथ ॥

कारज धीरे होत है, काहे होत अधीर ।
समय पाय तरुवर फरै, केतिक सींचौ नीर ॥

क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय ।
परबत पर खोदै कुँआ, कैसे निकलै तोय ॥

भेष बनावै सूर कौ, कायर सूर न सोय ।
खाल उढ़ाये सिंह की, स्यार सिंह नहीं होय ॥

सब देखै पै आपनो, दोष न देखै कोइ ।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होइ ॥

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान ।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निसान ॥

दीबो - देना
बरसिबे - बरसना
दौर - जल्द, दौड़
सोर - चादर
पौन - हवा
भाय - भाव
हिये - हृदय में
अनीत - अन्याय
लहिये - प्राप्त कीजिये
सैंधव - सेंधा नमक, घोड़ा
जीमते - खाते हुए
रिस - रोष
मों - में
कामरी - कंबल
भीजै - भीगता है
भावै - अच्छा लगे
कछु - कुछ
गुंजा - एक जंगली बीज जो लाल होता है, उसकी माला बनाकर जंगली लोग पहनते हैं । घुंघुची ।

ठौर - जगह
तिहिं - उसे
ल्याइहै - लायगा
कूपभेक - कुएँ का मेंढ़क (अज्ञानी)
कहा - क्या
सेवैं - सेवा करते हैं, रहते हैं ।
जान्यौ परै - जान पड़ता है
बिरवान - पेड़
चीकने पात - चिकने पत्ते, अच्छे पत्ते (भाव—होनहार लोगों के लक्षण शुरू से ही मालूम पड़ने लगते हैं ।)
निदान - आखिर, अन्त
लौं - तक
कलारी - शराब या ताड़ी बेचनेवाली
केतिक - कितना ही
पै - परन्तु
तरे - तले, नीचे (दिया तले अंधेरा—कहावत)